वर्ष ९, अंक ७

श्रीकृष्णाय नमः

मई

वैशाख १९९१

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक –
ब्र० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	... ...	१८६
२.	पुरोण गाथा	[ले० श्री स्वामी मोहि बाबा जी ...	१८५
३.	खिरता नल है (कविता)	[रचयित्री श्रीमती व्रतकुमारी "प्रभाकर" आश्रम	१८७
४.	साधन पथ	[ले० श्री स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती	१८८
५.	प्रेम प्याला (कविता)	[ले० श्री बी. एन. सराफ, बी. ए., एल एल. बी.	१९०
६.	द्रौपदी और पांडवों का जन्म	[ले० श्री महात्मा राम आश्रम	१९१
७.	कौन कहेगा (कविता)	[ले० श्री श्याम विरही	१९३
८.	मन	[ले० यमुना प्रसाद जी श्रीवास्तव	१९५
९.	प्रिय के प्रति	[श्रीमती व्रतकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम	१९९
१०.	योग-साधन	[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	२०१
११.	आंख मिचौनी (कविता)	[ले० वैकुण्ठ प्रसादजी आयुरत्न	२०२
१२.	सृष्टि क्रम	... ...	२०३
१३.	तेरा ही सहारा है (कविता)	... ...	२०५
१४.	प्रज्ञाचल का प्रतिविम्ब	[[ले० विद्याभूषण पं० मोहन शर्मा 'विशारद'	२०६
१५.	भगवत् स्वरूप प्रमाण व प्राप्ति	... ...	२०८
१६.	तारियो तिहारो है (कविता)	[ले० श्री नन्द कुमार शर्मा 'विशारद' ...	२१०
१७.	भजन	... ...	२११

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से ३) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखों को प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस से पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये, जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	३१)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
सूबेदार मेजर दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

बकासुर-उद्धार

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः।
पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्द्विवौकसाम्॥

GITA PRESS, GORAKHPUR

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, वैशाख, ता० १ मई, १९३५ | अंक ७ पूर्ण संख्या १०३

वेदोपदेश

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम॥

शोभन धन से युक्त और अखण्डनीय अग्नि, सब यज्ञों में वर्तमान जिस यजमान को तुम पाप से उद्धार करते और कल्याणवाही बल प्रदान करते हो, वह समृद्ध होता है। हम भी तुम्हारे स्तोता हैं। हम भी पुत्र-पौत्रादि के साथ तुम्हारे धन से सम्पन्न हों।

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्रतिरेह देव।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

अग्निदेव, तुम सौभाग्य जानते हो। इस कार्य में तुम हमारी आयु बढ़ाओ। मित्र, वरुण अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और आकाश हमारी उस आयु की रक्षा करें।

पुराण-गाथा

प्रल्हाद का दैत्य बालकों को उपदेश।

(ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी)

प्रल्हाद-हे दैत्यबालको! यह मनुष्य शरीर हड्डी मांसादि अपवित्र पदार्थों का बना हुआ है, मल, मूत्रादि अशुचि वस्तुओं से भरा हुआ, क्षण भंगुर होने से अध्रुव है, तो भी अक्षय पद का देने वाला है यानि मर को अमर बनाने वाला है, इस सुरदुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर मनुष्य को इन्द्रियों के भोगों के लिये प्रयास न करना चाहिये किंतु भागवतों का यानी भगवद्भक्तों का आचरण ही करना चाहिये, यानी अपनी मति के अनुसार परम पुरुष विष्णु के चरण कमलों का ही सेवन करना ही योग्य है क्योंकि विष्णु भगवान् सर्वभूतों के परम प्यारे, आत्मा, ईश्वर और सुहृत् हैं, बिना किसी कारण के ही सब पर करुणा करते हैं, भक्तों के दुःखों को देख नहीं सके, तुरत ही, उनका दुःख दूर करने के लिये निर्गुण होकर भी सगुण होकर दौड़ते हैं और उन का दुःख दूर करते हैं, ऐसे परम सुहृत्, दुःख दूर करने वाले भगवान् को छोड़ कर कोई मूर्ख ही दूसरे का आराधन करेगा! चतुर पुरुष तो भगवान् के चरणों का ही मनसे, कर्म से और वाणी से आराधन करते हैं, अन्य किसी का नहीं करते।

हे दैत्यबालको! जैसे बिना प्रयत्न किये हुए प्रारब्ध वश से बिना इच्छा किये भी दुःख अपने आप ही आजाता है यानी दुःख को कोई चाहता नहीं है, उसके लिये कोई प्रयास भी नहीं करता, फिर भी दैवयोग से दुःख तो आ ही जाता है, इसी प्रकार इन्द्रियों का सुख भी बिना इच्छा और प्रयत्न किये ही प्रारब्ध के वश से आजाता है इसलिये उसके लिये प्रयत्न करने में व्यर्थ ही आयु को न खोना चाहिये। जैसे दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन स्वभाव से आता ही रहता है, इसी प्रकार सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख आता ही रहता है, इस कारण सुख के लिये प्रयत्न करना मूर्खता ही है, चतुराई नहीं है, क्योंकि ऐसे करने से मुकुन्द भगवान् के चरण प्राप्त नहीं होते। मुकुन्द भगवान् के चरणों में सुख है, अन्य कहीं सुख नहीं है, केशव के चरणों को प्राप्त हुए बिना कोई सुखी नहीं हुआ, न होता है न आगे होगा और न हो सका है किंतु जब कभी जो कोई सुखी हुआ है, अथवा होता है, वह मधुसूदन भगवान् के चरणों को प्राप्त होकर हुआ है, अथवा होता है, इसलिये हे मित्रो! जब तक इस शरीर का सामर्थ्य न घटे और शरीर नष्ट न हो, उससे पहले ही विद्वान को अपने कल्याण के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये।

हे श्रेयाभिलाषियो! यह संसार भयमय है, इस संसार में कोई भी भय रहित नहीं है, बालक को माता पिता का भय है, युवा को बुढ़ापे से भय

है, धनी को चोर से भय है, निर्धन को भूख, प्यास, जाड़े, गर्मी से भय है, चोर को राजा से भय है, हरदम प्राणी के शिर पर भय ही खड़े रहते हैं, जब चाहें, तब वह गला घोंट देते हैं, ऐसे भयमय संसार में जहां सर्वत्र, सर्वदा भय हो, कोई कैसे सुखी रह सका है। नहीं रह सका! बकरे की मा कब तक मिठाई बांटेगी? वह तो एक न एक दिन काटा ही जायगा, दैवयोग से किसी ने नहीं काटा तो, मृत्यु भगवान् तो अवश्य ही एक न एक दिन टेंटवा मसोस देंगे! ऐसे के लिये मिठाई बांटना निरर्थक ही है! ऐसे संसार में तो मनुष्य को झटपट ही अमर होने का उपाय करना चाहिये और वह उपाय सर्वदा अमर केशव भगवान् की शरण है, अमर होने का अन्य कोई उपाय नहीं है। यदि कोई अमर हो सका है तो अमर देव हृषीकेश भगवान् को प्राप्त होकर ही हो सका है, अन्यथा नहीं हो सका इसलिये हृदयेश की ही शरण लेनी चाहिये! विषय भोगों में प्रमत्त न रहना चाहिये।

हे मित्रो! मनुष्य समझता है कि मैं भोगों को भोगता हूं परन्तु विचार कर देखा जाय, तो मनुष्य भोगों को नहीं भोगता किंतु भोग ही मनुष्य को भोगते हैं, भोग वो ज्यों के त्यों बने रहते हैं, भोग भोगने से मनुष्य का पुण्य क्षीण होता जाता है, पुण्य क्षीण होने से इन्द्रियां निर्बल होती चली जाती हैं अन्त में शक्तिहीन होजाती हैं, शक्तिहीन इन्द्रियों से मनुष्य भोग तो भोग नहीं सका, किंतु भोगों की इच्छा बनी रहने से, भोगों को देख २ कर और दूसरों को भोगता हुआ देख २ कर मनमें कुढ़ा करता है। मनमें कुढ़ने से दीन हो जाता है, दीन हो जाना ही भोगों से भोगा जाना है, यानी भोग मनुष्य को दीन कर देते हैं। मनुष्य तो समझता है कि मैं भोग भोगने से पुष्ट हो गया हूं और वस्तुतः तो वह भोग भोगने से दीन होता चला जाता है, तब मनुष्य ने भोग कहां भोगे? भोगों ने ही मनुष्य को भोगा!

हे मित्रो! ऐसा समझ कर कि भोगों को हम नहीं भोगते, किंतु भोग हमको भोगते हैं, चतुर पुरुष भोगों में आसक्त नहीं होते किंतु भोगों से मुख मोड़कर अपने हृदय में स्थित, सबके आत्मा, सबके बलों के बल, हृदयेश मुकुन्द भगवान् का भजन करते हैं ऐसा करने से उनका बल बढ़ता हुआ चला जाता है और अन्त में वे इतने बली होजाते हैं कि सबसे बली कालको भी जीत लेते हैं। हृषीकेश भगवान् काल के भी काल हैं, जिसको जो भजता है, उसी को वह प्राप्त होता है, यह नियम है, काल के काल केशव को भजने से वह भी काल का काल हो जाता है, इसलिये तुम भी भोगों की आसक्ति छोड़कर अंतर्यामी जगदीश्वर को भजो, अभी भजो देर मत करो, 'करले सो काम, भजले सो राम' कल करना सो आज करो, आज करना हो, सो अभी करो, समय बीत जायगा, तब क्या करोगे, तब तो कुछ भी न हो सकेगा, हाथ मलते हुये पछताते रह जाओगे, परन्तु पछताने से क्या होता है? कुछ नहीं होता। जब खेती सूख गयी, तब भले ही मूसलाधार मेघ बर्षते रहें, क्या होता है। कुछ नहीं होता, सूखी हुई खेती हरी नहीं होती। जैसे सूखी खेती हरी नहीं हो सकी, इसी प्रकार गया हुआ सामर्थ्य फिर नहीं आसका।

हे सज्जनो! यदि तुम यह कहो कि अभी तो हम बालक हैं, अभी हममें इतनी बुद्धि नहीं है कि हम भजन कर सकें, जब बड़े हो जांयगे, तब भजन कर लेंगे, तो यह बात नहीं है, जैसी तुम्हारी बुद्धि अब निर्दोष है, वैसी निर्दोष बड़ेपन में नहीं रहेगी! बचपन में जो संस्कार मनमें पड़जाते हैं,

वे आयुभर बने रहते हैं, चित्त में से निकलते नहीं, यदि अभी से ईश्वर भजन के संस्कार पड़गये, तब तो आगे भजन कर सकोगे, यदि अब भजन के संस्कार न पड़े किंतु भोगों के संस्कार पड़ गये, तो आगे ईश्वर भजन के संस्कार पड़ने की आशा नहीं है, क्योंकि भोगों के संस्कार प्रबल हो जांयगे और भोगों के प्रबल संस्कारों को दबाने के लिये बहुत ही कठिनाई पड़ेगी, कठिनाई ही नहीं प्रबल संस्कारों का हटाना असंभव सा हो जायगा। जैसे छोटे कोमल पौदे को झुकाकर सीधा, टेढा करसके हैं, बड़े, कठोर को नहीं कर सके, प्रथम तो वह झुकेगा ही नहीं और यदि झुका तो टूट ही जायगा, इसी प्रकार बालकपने के संस्कारों को जवानी में दबाना कठिन अथवा असंभव सा ही है।

हे सखे! सौ वर्ष का मनुष्य का परम आयु है। अजितात्मा का आधा आयु तो सोने में निष्फल चला जता है, क्योंकि रात्रि में वह गाढ अंधकार को प्राप्त होकर यानी बेहोश होकर सोजाता है। मुग्ध बालक की बाल्यपने और कुमारपने में बीस वर्ष की आयु खेलने में चली जाती है, असमर्थ वृद्ध पुरुष की बीस वर्ष की आयु बुढापे में चली जाती है और बाकी गृह में आसक्त की आयु बाल-बान, काम और मोहके वश में चली जाती है ऐसा पुरुष भजन कैसे कर सका है। नहीं करसका! वह तो आज करूंगा कल करूंगा, निर्धन होगया हूं, कुछ धन कमालूंगा, तब भजन करूंगा, बड़ा लड़का समर्थ होजाय, तो निश्चिंत होकर भजन करूंगा छोटे लड़के का विवाह करना बाकी है, बड़ों का होगया है छोटे का भी विवाह होजायगा तब भजन करूंगा, पौत्र को गोदी खिलाकर करूंगा, पौत्र का मुख देखकर करूंगा, इत्यादि मनोरथ करता रहता है, अभी उसका मनोरथ पूर्ण नहीं होने पाया कि यमराज आकर उसे न मालूम कहां ले जाते हैं और न मालूम क्या २ उसकी दुर्दशा करते हैं, इसलिये हे मित्रो! अभी से ईश्वर के भजन, ध्यान, संकीर्तन में लगजाओ, देर न करो! तुम्हारा कल्याण हो!

हे विद्वानो! यदि तुम कहो कि घर में आसक्त होने पर भी पीछे विरक्त होकर स्नेह के पाशों को तोड़ डालेंगे, क्योंकि संसार मिथ्या ही तो है, मिथ्या वस्तु का स्नेह तोड़ने में प्रयास ही क्या है? कुछ भी प्रयास नहीं है, जहां संसार से मुख मोड़ा कि विरक्त हुए, तो ऐसा नहीं है, स्नेह की फांसी बड़ी कठिन है, टूट नहीं सकी, भला! कौनसा ऐसा पुरुष है कि अजितेन्द्रिय होकर भी और घर में आसक्त होने पर भी तथा स्नेह की दृढ़ फांसी में बंधा हुआ स्नेह की फांसी को तोड़ने को समर्थ हो सका है। नहीं हो सका। भला! जिस धन को मनुष्य प्राणों से भी अधिक प्यार करता है और जिस धनको तस्कर, सेवक और व्यापारी परम प्रिय प्राण देकर भी खरीदते हैं, उस धन की तृष्णा को कौन छोड़ सका है? कोई नहीं छोड़ सका।

एक साहूकार के घर में एकदिन डाका पड़ा, कुछ डाकू घर में घुस आये, कुछ बाहर खड़े रहे। साहूकार को भी डाका पड़ने की खबर लग गयी थी सेठ सहित नौकर चाकर सब हथियार लिये हुए लड़ने को तैयार थे। डाकुओं ने कहा कि हम धन मात्र चाहते हैं, तुम्हारी जान लेना नहीं चाहते, यदि तुम हमको धन बता दो, तो हम तुमको मारेंगे नहीं! साहूकार का लड़का बोला कि नहीं! हमने धन बड़ी मेहनत करके कमाया है, बिना जान दिये हम तुमको धन नहीं लेजाने देंगे, हमको मारकर भले ही तुम धन लेजाना! डाकू यह सुनकर लड़ने

लगे, साहूकार के आदमी भी लड़ने लगे ! अन्त में साहूकार के लड़के वाले, नौकर चाकर सब मारे गये, केवल स्त्रियां शेष रह गयीं, डाकुओं को जहां२ धन मिला, वहां २ से समस्त धनको लेकर चल-दिये, स्त्रियां देखती ही रोती पीटती रह गयीं। भला ! ऐसे प्यारे धनकी आसक्ति को कोई कैसे छोड़ सका है। नहीं छोड़सका।

हे मित्रो ! जैसे मनुष्य धनकी आसक्ति को नहीं छोड़ सका, इसी प्रकार स्त्री और बाल बच्चों की आसक्ति को भी नहीं छोड़ सका, क्योंकि जिस प्रिया के साथ मनुष्य एकान्त में बहुत काल तक प्यार की बात चीत करता रहा है और जिन बालकों के प्यारे, तोतले वचन सुनता रहा है, जिनको सुन २ कर दिन दूना, रात चौगना अनुराग बढ़ता रहा है उन प्यारे स्त्री और बच्चों को अधीर पुरुष कैसे छोड़ने का उत्साह कर सका है ? नहीं कर-सका। तब तुम युवा अवस्था में पुत्र कलत्रादि का स्नेह छोड़कर कैसे ईश्वर भजन कर सके हो ? नहीं कर सके, इसलिये युवा अवस्था आने से पहिले ही ईश्वर भजन में लग जाओ युवा अवस्था की बाट मत देखो।

हे मित्रो ! कमाई करने वाले पुत्र, अपनी सुसराल से आने वाली हृदयंगम पुत्रियां, काम में हाथ बटाने वाले भाई, मधुर भाषिणी भगिनियां, वृद्ध पिता माता, कुर्सी मेज आदि सामान, महल के सामान, मकान, कुल की जीविका, गाय घोड़े आदि पशु, नौकर चाकर आदि, इन सब आराम की वस्तुओं को युवावस्था मनुष्य छोड़ सका नहीं। यदि कहो कि इनके छोड़ने की क्या आवश्यकता है तो सुनो, ये सब वस्तुयें बंधन का कारण हैं। जैसे कोशकार कीड़ा अपना घर बनाते समय ऐसा घर बनाता है कि उसमें निकलने का द्वार भी नहीं रखता और उस घर में बन्द होकर आप निकल नहीं सका वहां ही मर जाता है, इसी प्रकार यह मनुष्य उपरोक्त वस्तुओं के प्रेम में ऐसा बंध जाता है कि अनेक कष्ट पाता रहता है फिर भी निकल नहीं सका, मोह, शोक, भय से मोहित, शोकातुर और भयभीत रहता है, इस प्रकार महाकष्ट पाता है। तुम्हीं बताओ कि जो खाने, पीने और विषय भोगों में ही अपने को कृतकृत्य मानता हो, उसको वैराग्य कैसे हो सका है। नहीं हो सका और राग महा अनर्थ का मूल है ही, राग के कारण मनुष्य बारम्बार मरता जन्मता हुआ अनेक जन्मों तक दुःख पाता है, शान्ति स्वरूप परमात्मा को प्राप्त नहीं होता। इसलिये अभी भजन में लगजाओ।

पाठक ! प्रल्हाद का उपदेश विस्तार से आगे के लेख में आपके कर्ण गोचर करेंगे। इतने उपदेश का सार यह है।

कुं—बालकपन का पता ज्यों, देय उमर भर काम।
छोटे पन का भजन त्यों, देय सदा आराम॥
देय सदा आराम, भजन ईश्वर का प्यारे !
जीवत दे सुख अन्त, ईश से देय मिलारे॥
ईश भजन से धीर, छ ट देना मत मनका।
भोला ! अब भी चेत, सोच क्या बालक पनका॥

थिरता न लहै

[रचयित्री श्रीमती राजकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम]

तपदान बहु जप गान किये अज्ञमान किये सज्जन मन माहीं।
श्रुति शास्त्र पढ़े बनमें विचरे सचरे दुःख दीन दशा कबु ताहीं॥
मत योग प्रयोग वियोग लहै न लहै सुमनोरथ इह जग मांहीं।
गुरु ज्ञान बिना अनरैन दिना रे मना न लहै थिरता उर मांहीं॥

साधन-पथ

(ले० श्री स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती)

साधन-पथ में सबसे अधिक आवश्यकता संयमी जीवन की है। संयम नाम है समता का और संयम का फल भी समता है। समता की प्राप्ति संयम के बिना कभी नहीं हो सकती। संयम से त्रुटि निकल जाती है। त्रुटि दो प्रकार की होती है, एक कमी और दूसरी ज्यादती। कमी को पूरी करना और ज्यादती को कम करना यही संयम है। इसको यूं समझिए एक आदमी कंजूस है और दूसरा फिजूल खर्च है। कंजूस में खर्च न करने की त्रुटि है और फिजूल खर्च में अधिक खर्च करने की त्रुटि है। एक को लोभ की बीमारी है तो दूसरे को अहंकार की। दोनों का फल दुःख है। कमी का वास-स्थान तमोगुण है और ज्यादती का निवास-स्थान रजोगुण है। यही दो प्रकृति के गुण हैं जो जीवन के संयमी बनने में रुकावट डालते हैं। तमोगुण कर्तव्य कर्म में प्रवृत्त नहीं होने देता और रजोगुण अनावश्यक कर्म करवाता है। जो इन गुणों पर विजय नहीं पाते उनका जीवन धार्मिक नहीं बन सकता, फिर मोक्ष की तो कल्पना ही क्या हो सकती है? जो गुण जिस मनुष्य की प्रकृति में होगा वह उसके प्रत्येक कर्म में हर समय व्यक्त होता रहेगा। साधक को चाहिए कि सावधानी और ध्यान पूर्वक अपने जीवन को अध्ययन करे और इन चोरों का पता लगाकर इनको अपने वश करने का प्रयत्न करे।

शरीर—शरीर के द्वारा ही सब कुछ साधन होते हैं। साधनों में शरीर ही परं सहायक है। अर्थात् यूं समझिए कि शरीर का ही साधन करना है। आत्मा तो स्वतः सिद्ध है। वह तो पूर्ण है। झगड़ा सब प्रकृति का है। प्रकृति पर विजय पाना या इसको भूल जाना, इससे बेपरवाह होजाना यही दो मार्ग हैं जिनके द्वारा उस प्रीतम की प्राप्ति होगी, जो लोग शरीर की तरफ ध्यान नहीं देते वह भूल करते हैं, जो ऐसा उपदेश देते हैं कि शरीर मिथ्या है इसकी क्या फिकर करनी है वह भी गलती करते हैं। मुबारिक हैं वह लोग जो शरीर को भूल कर आत्मा में ध्यानावस्थित होजाते हैं। धन्य है उन वीर पुरुषों को जो शरीर को तृणवत् समझकर प्यारे प्रीतम की खोज में उत्कट तपश्चर्या करते हैं। शरीर सूख कर कांटा होजावे चाहे उसका परमाणु परमाणु प्रथक् होकर प्रकृति में लय होजावे परन्तु प्रीतम की एक क्षण की विस्मृति उनको सहन नहीं हो सकती, परन्तु ऐसे माई के लाल करोड़ों में कोई एक ही होते हैं वह तो उत्पन्न होते ही सत्त्वगुण प्रधान होते हैं। उनकी नकल करने लगना या वेदान्त के ग्रन्थ पढ़कर शरीर को मिथ्या कह कर उसकी अवहेलना करना भूल है। इसलिए साधन शरीर से ही आरम्भ करना सरल, सीधा और सर्व साधारण के लिए सर्वोत्तम उपाय है।

शरीर तीन प्रकार के हैं, कारण, सूक्ष्म और स्थूल। कारण शरीर का ज्ञान तो उनको ही हो सकता है जिनकी गति ध्यान में होगई है। साधारण मनुष्यों को सूक्ष्म और स्थूल का ही ज्ञान होता है। परन्तु सूक्ष्म के दाव पेच भी बिना अभ्यास व साधन के समझ में आने कठिन हैं। इसलिए सबसे पहले स्थूल पर ही ध्यान देना चाहिए। इस पर ध्यान देना

यह है कि इसके तमोगुण और रजोगुण भाव को सत्त्व के आधीन करना है। इनमें से भी तमोगुण को पहले विचारना चाहिए, साधक का सबसे मुख्य लक्षण यह होना चाहिए कि वह अपनी कमी को विचारे। जो अपनी त्रुटियों को नहीं विचारता और उन पर ध्यान नहीं देता वह जिज्ञासु नहीं है, वह अहंकार में मस्त अपना अमूल्य समय इसी प्रकार नष्ट करता है जैसे जंगल का उन्मत्त व मद मस्त हिरण नाभी की कस्तूरी की महक से पागल हुआ अपने को बादशाह समझा फिरता रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादन किया है–

तमस्त्वं ज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभि स्तन्निबध्नाति भारत ॥

इसके मुख्य गुण प्रमाद, आलस्य और निद्रा हैं। लापरवाही, आलस्य और अधिक निद्रा मनुष्य के शत्रु हैं। संसार में जितने महापुरुष हुए हैं सबने ही इन अवगुणों को खैरबाद कहा है। जो लोग तम से अच्छादित रहते हैं और बड़ी २ पुस्तकें पढ़ लेते हैं, या बिना चित्त के लगाए माला के मणियों की रट लगाते रहते हैं अथवा कई घण्टे सत्संग सुनने में व्यतीत करते हैं, आध्यात्मिक क्षेत्र में अधिक उन्नति नहीं कर सकते दिमाग में बहुत पुस्तकों को रखना बोझा मात्र ही है। यदि मनुष्य ने प्रकृति के गुणों पर विजय न पाई। उस आलसी और प्रमादी आदमी से जो चार वेद का पढ़ा है एक अनपढ परन्तु उत्साही व कार्य-तत्पर मुरुष हज़ार गुणा श्रेष्ठ है। शब्दों पर यदि अमल न हो तो शब्द का जाल मनुष्य को अहंकार रूपी फांसी में बान्धने में सबसे बड़ा शत्रु है। इसलिए साधक को चाहिए कि सब पुस्तकों को एक तरफ रख कर सबसे प्रथम वह उपाय करे जिससे उसका आलस्य दूर हो। अध्यात्म-विद्या के समुद्र उपनिषदों को बार २ अध्ययन करने से यही मालूम हुआ है कि अध्यात्म विद्या के जिज्ञासुओं को जो कि ऋषि मुनियों के आश्रमों में उस विद्या को प्राप्त करने जाते थे, ऋषिमुनी कोई ग्रन्थ नहीं पढ़ाते थे और ग्रन्थों में रक्खा भी क्या है ? यदि अध्यात्म विद्या ग्रन्थों में ही होती तो पढ़े लिखे संसार में सबसे अधिक धार्मिक होते परन्तु देखने में इसके विपरीत आता है ऋषि मुनी उन शिष्यों को ऐसा काम बता देते थे जिसमें उनको तप करना पड़ता था। वह तप उनके शरीर को शुद्ध कर देता था। जब प्रकृति शुद्ध हो जाती थी तो दिया हुआ ज्ञान उसमें आप ही स्थिर होकर हृदय में प्रकाश उत्पन्न कर देता था। जिसके फल स्वरूप वह जिज्ञासु आनन्द में मस्त होजाते थे। यदि आपको संसार के कामों से अवकाश नहीं है या दुर्भाग्य से किसी ऐसे आश्रम का ज्ञान नहीं है जिस में तपश्चर्या द्वारा जिज्ञासुओं को अध्यात्मिक विद्या दी जाती हो तो घरपर रहते हुए ही साधन करो।

प्रातः उठना– अध्यात्म विद्या के जिज्ञासुओं के लिए सबसे प्रथम साधन है ब्रह्म मुहूर्त में उठना। जो आदमी आलस्य वश सवेरे नहीं उठता वह इस विद्या का विद्यार्थी नहीं बन सकता। इसलिए सबसे प्रथम प्रातःकाल उठने का अभ्यास करो। इसका व्रत धारण करो, इस नियम को दृढ़ता से पकड़ो अपनी समस्त शक्ति इस पर खर्च करदो। इस की पूर्ति के लिए अपने सब काम शिथिल करदो। तुमको अपने व्रत की लगन होनी चाहिए। जब तक तुम इस नियम पर आरूढ़ न होजाओ सन्तोष न करो। अध्यात्म विद्या पढ़ने लिखने और बात बनाने का काम नहीं है। इसमें तो एक २ क्षण का ठीक उपयोग होना चाहिए। यह करने की बात है।

जानलेने या समझ लेने लेने की नहीं। पुस्तकें पढ़कर और व्याख्यान देकर तुम दूसरों को और अपने आपको धोखा ही दे सकते हो वास्तविक आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकते। यदि प्रातः नहीं उठ सकते तो शाम को सवेरे सोने का नियम बनाओ। जब सवेरे सोओगे तो आप ही सवेरे उठने का स्वभाव बन जावेगा नियम के पालन करने में रुकावटें आवेंगी यह अनिवार्य नियम है परन्तु उनका दृढ़ता से मुकाबला करो। यदि तुमने एक साधन कर लिया तो आगे के दस साधन तुमको बहुत आसान हो जावेंगे। ब्रह्म मुहूर्त में उठना आध्यात्म जीवन बनाने की नींव या प्रथम सीढ़ी है। इसके आधार पर ही साधन की समस्त इमारत खड़ी हो सकेगी। तमोगुण को निकालने का सबसे प्रथम यही साधन है। इसी से संयमी जीवन का आरम्भ होता है।

(क्रमशः)

प्रेम-माला

मालिनी वृत

[ले० श्री बी० एल० सराफ बी० ए०]

विभु सुरभित माला, है बनी सौम्य न्यारी, नव कलियुत प्यारे, वेष-द्रामी तुम्हारी।
निस नव सुखदा क्यों कौन ने है संभारी, जब हृद प्रभु ने या, है स्वी मोहकारी॥
सु संजित यह माला सौख्य की शान्तधारा यह भरि सुन गाओं, मैं उन्हें है प्रसारा।
यह नहिं पर मेरे, मोह की मात्र द्वारा, जब बद्धि न होता, ऊर्मि से क्षुब्ध सारा॥
यदपि कुसुम आभा शान्ति पूर्ण नहीं है, सरल मृदुल मेरे, हास्य अमना नहीं है।
विकसित ममता को, स्वामि भला कहीं है, प्रिय नहीं दीख सका, किन्तु बैठा वहीं है॥
सुमन निकट फूले, जो बरावार्य धारे, विनय वरित जाने कंध के शान हारे।
मम हृदय दुख है, पा गये प्राण सारे, मृदु अब हंसते हैं, हो रहे वा सुखारे॥
विकसित मन होके, आप देखो यथा है, सुत रवि किरणों से, दैव आभासना है।
यह गृह जिसमें भी, प्रेम की वासना है, विधि दिव सुख दाता, आद्य वर्षासना है॥
उस गृह बससारो, जीवनी को जिताओ, प्रिय तब उसमें है, देख निष्ठा निभाओ।
मन धरि उसको हो, प्रेम में आ मिलाओ, तबफिर जगमें क्या, मोह से भाग आओ॥

द्रौपदी और पाँडवों का जन्म

[ले०—महात्मा राम 'आश्रम']

द्रौपदी और पाण्डवों का जन्म किस प्रकार हुआ, और द्रौपदी पांचों पाण्डवों को क्यों विवाही गई, यह सब वृतान्त जिस प्रकार राजा द्रुपद से वेद व्यासजी ने कथन किया था वह इस प्रकार है:—

जब राजा द्रुपद ने द्रौपदी के विषय में पांचों पाण्डवों की पत्नी बनने में धर्म किस प्रकार माना जा सकता है ऐसे अनेक विचार करने पर भी कोई निश्चय नहीं कर पाता। और अति चिन्ता में पड़ जाने के कारण अपने परिवार सहित राजा द्रुपद बड़े गम्भीर शोक सागर में डूब रहे थे। उसी समय दैवयोग से भूत तथा भविष्य काल के ज्ञाता पराशर तथा सत्यवती के पुत्र भगवान वेद-व्यासजी आगये उस समय राजा द्रुपद और पाण्डवों ने खड़े होकर उनका शास्त्र विधि से सत्कार किया और उनकी पूजा करके सोने के उत्तम आसन पर बैठाया पश्चात् उनकी आज्ञा पाकर सब बैठ गये। तब हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक राजा द्रुपद ने व्यासजी से इस प्रकार कहा कि—हे महाराज ? इस मेरी पुत्री के विषय में आप क्या सम्मति देते हैं ? हे महाराज ! एक ही स्त्री बहुत से पुरुषों के साथ किस प्रकार विवाही जा सकती है, ऐसा करने में शंकरता का दोष नहीं आवेगा। ऐसा करने में धर्म नहीं है किन्तु अधर्म है, और लोकाचार तथा वेद से भी विरुद्ध है ऐसा मैं मानता हूं। पहले महात्माओं ने ऐसे धर्म को स्वीकार नहीं किया।

एक स्त्री बहुत से पतियों की धर्मपत्नी नहीं हो सकती अतः विद्वान् पुरुषों को ऐसे धर्म का आचरण नहीं करना चाहिये, इसलिए मैं भी ऐसे संदिग्ध धर्म का आचरण नहीं करूंगा। इसके पश्चात् द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न कहने लगा कि, हे द्विज श्रेष्ट ! हे तपोधन ! सदाचरण वाला बड़ा भाई अपने छोटे भाई की स्त्री को अपनी स्त्री कैसे मानेगा। हे महाराज ? धर्म की बड़ी सूक्ष्म गति है इस कारण हम इस बात को भी नहीं जानते हैं कि यह धर्म है वा अधर्म है। इस लिये द्रौपदी पांचों पाण्डवों की पत्नी बने यह बात हमसे तो किसी प्रकार भी नहीं कही जा सकती।

तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिर कहने लगे कि हे महाराज ! मेरी वाणी कभी मिथ्या भाषण नहीं करती है तथा मेरी बुद्धि भी कभी अधर्म में प्रवृत्त नहीं होती है। पुराणों में भी सुना जाता है कि गौतम कुल में उत्पन्न हुई पतिव्रता स्त्रियों में श्रेष्ठ जटिला नाम की स्त्री सात मुनियों को विवाही गई थी और धर्म को जानने वाले गुरुजनों के वचन को ही परम धर्म माना गया है, और सब ही गुरुजनों में माता परम गुरु है ऐसा शास्त्रों में लिखा है, उस हमारी माता ने ही हमसे कहा है कि लाई हुई भिक्षा को तुम पांचों भाई ग्रहण करो।

इस कारण हे द्विजवर ? मैं तो अपनी माता के इस वचन को ही परं धर्म मानता हूं। इसके पश्चात् भगवान वेद व्यासजी खड़े होगये और राजा द्रुपद का हाथ पकड़ कर कमरा के अन्दर लेगये और एक ही स्त्री बहुत पतियों को किस प्रकार कर सकती है और वह धर्म क्यों माना

जाता है इस विषय की सब बातें राजा द्रुपद से कहा ? द्वैपायन भगवान् व्यासदेव जी कहने लगे कि हे राजन ! पूर्व काल में देवताओं ने नैमषारण्य में एक बड़े भारी यज्ञ का आरम्भ किया था। उस यज्ञ में प्रायः सभी देवता उपस्थित हुए थे एक दिन देवराज इन्द्र के साथ कुछ देवता गंगा नदी के तट पर बैठे थे। उस समय गंगा के प्रवाह में बह कर आता हुआ एक सोने का कमल देखा। उस कमल को देखकर सब देवता आश्चर्य करने लगे, उन देवताओं में मुख्य और शूर वीर इन्द्र जिधर से वह कमल बह कर आया था उधर ही चलदिया। और जहां से गंगा नदी का प्रवाह निकल रहा था वहां पहुंच गया। वहां इन्द्र ने अग्नि के समान कान्ति वाली रोती हुई एक स्त्री को देखा। जो स्त्री जल का घड़ा लाने के लिये गंगा नदी में खड़ी थी उस स्त्री की आंखों से जो आंसू पड़ते थे वह सोने के कमल बनकर बहते थे। इस आश्चर्य को देख कर देवराज इन्द्र उस स्त्री के पास गया और बूझने लगा कि अरी ओ कल्याणी ! तू कौन है और तेरे रोने का क्या कारण है। यह सुन कर उस स्त्री ने उत्तर दिया कि मैं कौन हूं और मुझसी मन्द भागिनी को क्यों रोना पड़ा है, यह जानने की यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ २ चलो तब मैं जिसलिये रो रही हूं वह सब तुम्हें मालुम हो जायगा। तदनन्तर इन्द्र उस स्त्री के पीछे २ कुछ दूर तक गया आगे हिमालय पर्वत के शिखर पर एक सुन्दर स्वरूपवान् युवा अवस्था वाला पुरुष सिंहासन लगाकर बैठा हुआ एक स्त्री के साथ पासों से खेल रहा था। यह देख कर देवराज इन्द्र ने कहा कि—ओ विद्वान् युवा पुरुष ! यह सब विश्व मेरा है और मेरे वश में है इस बात को तू जानले। जब उस युवा पुरुष ने इन्द्र को कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब इन्द्र ने क्रोध में भरकर फिर कहा कि अरे तरुण पुरुष ! मैं इस सब विश्व का स्वामी हूं तू नहीं जानता। इस प्रकार इन्द्र को कोप में भरा हुआ देख कर उस युवा पुरुष (जो साक्षात् महादेव थे) उनको हंसी आगई और वह धीरे २ इन्द्र की तरफ देखने लगा। उस युवा रूप महादेव की दृष्टि पड़ते ही इन्द्र खम्भे की समान अचल खड़ा रह गया, तब महादेव जी उस रोती हुई स्त्री से कहने लगे कि तुम इस इन्द्र को मेरे पास लाओ मेरे पास लाने से फिर कभी भी इसको ऐसा अभिमान नहीं होगा। उस रोती हुई स्त्री ने आगे लेजाने के लिये इन्द्र के शरीर को छुआ। उस स्त्री के छूते ही इन्द्र के सब अंग ढीले पड़गये और वह पृथिवी पर गिरपड़ा। तब उग्र तेज वाले महादेव जी कहने लगे कि ओ इन्द्र ! अब आगे को किसी दिन भी ऐसा अभिमान मत करना। हे इन्द्र ! तेरा बल और वीर्य अपार है इसलिये तू इस गुफा के द्वार पर जो बड़ी भारी शिला है इसको हटादे और इस गुफा के भीतर प्रवेश कर तहां सूर्य की समान तेजस्वी तुझ सरीखे बहुत बैठे हैं। शंकर की आज्ञा से इन्द्र ने गुफा की शिला को हटा दिया और उस गुफा में प्रवेश किया तो वहां अपनी समान तेज वाले दूसरे चार इन्द्र बैठे देखे। उन पुरुषों को देख कर इन्द्र को बड़ा दुःख हुआ और विचारने लगा कि कहीं आगे को मेरी भी इनकी सी दशा तो नहीं होगी। इतने में भगवान् शंकर कोपकर आंखें फेर कर इन्द्र से कहने लगे कि ओ वज्रधारी इन्द्र ! ओ सौ यज्ञ करने वाले ? तूने मेरे सामने आकर मूर्खता से मेरा अपमान किया था इस कारण तू इस गुफा में शीघ्र ही प्रवेश कर शंभु के ऐसे वचन सुन कर अपना तिरस्कार होने से देवराज इन्द्र बड़ा ही दुखित

हुआ और पीपल के पत्ते के समान कांपने लगा। उमापति महादेव जी ने एकायकी, इस गुफा में प्रवेश कर जब ऐसा वचन कहा तब इन्द्र भय से कांपने लगा। उस समय भय से कांपता हुआ दोनों हाथ जोड़ कर अनेक रूपधारी शंकर से इस प्रकार कहने लगा कि हे शिव ? तुम ही इस सकल भुवन के आदि पिता हो मुझ पर कृपा करो मैंने अज्ञान से आपको नहीं पहचाना था इसलिये मेरा अपराध क्षमा करो। इन्द्र के ऐसे विनीत वचन सुन कर उमतेजधारी शंकर हंसकर कहने लगे कि तेरे जैसे स्वभाव वाले पुरुष कृपा के पात्र नहीं होते हैं। हे इन्द्र ? ये जो यहां बैठे है ये भी तुझ जैसे ही हैं, इस कारण तू शीघ्र ही इस गुफा में प्रवेश कर और इनके पास जाकर सो रह। यहां तुम सबकी एक सी दशा होनी है इसमें संदेह नहीं, तुम सब अब मनुष्यों की योनी में अवतार लोगे और वहां अनेक मनुष्यों का संहार करके अपने सत्कर्म से पहले पाये हुए इन्द्र लोक में फिर लौट आओगे इस प्रकार मैंने जो कुछ कहा है वह सब काम तुम्हें मर्त्य लोक में करना पड़ेगा। शंकर के इस वचन को सुनकर देवराज इन्द्र ने कहा कि हे देवाधिदेव ? हे महादेव ? हम देवलोक से मनुष्य लोक में जाय और वहां पर मुक्ति प्राप्त करें यह बड़ा ही कठिन काम है तो भी हम आपकी आज्ञा से मर्त्य लोक में जायंगे परंतु वहां जो हमारी माता होने वाली हो उस में धर्म वायु, इन्द्र और अश्विनी कुमार ही हमको उत्पन्न करें यह हम आपसे चाहते हैं। महादेव जी ने तथास्तु कहा तदनन्तर देवराज इन्द्र ने सब देवताओं में श्रेष्ठ महादेव जी से फिर इस प्रकार कि हे शंकर मैं स्वयं मर्त्य लोक में न जाकर आपकी आज्ञा से बलवीर्य में अपने ही समान पुरुष उत्पन्न करके इन चारों के साथ भेजदूंगा। उन चारों में एक 'विश्वभुक् भूतधामा था, दुसरा 'प्रतापवान था, तीसरा शिवि, चौथा 'शान्ति' था और पांचवां 'तेजस्वी' ये उन पांचों के नाम थे। इन पांचों को उस धनुष धारी शंकर ने अपने भोले स्वभाव से इच्छित पदार्थ दिये और सब लोकों में श्रेष्ठ रूप वाली स्वर्ग की लक्ष्मी को उन पांचों की स्त्री रूप से रचा। इसके पश्चात् महादेव जी इन पांचों इन्द्रों को अपने साथ में लेकर 'अप्रमेय, अव्यक्त, अजन्मा, अनन्त, सनातन, पुराण, पुरुष, विश्वात्मा, भगवान, नारायण जी के पास गये और यह सब वृतान्त उनसे निवेदन किया। तब यह बात वैकुन्ठ निवासी श्रीवासी श्री हरी भगवान् जी ने भी स्वीकार करली और अपने माथे में से दो बाल उखाड़े जिनमें एक बाल काला था और दुसरा सफेद था। यह दोनों बाल यदुकुल की देवकी और रोहणी नाम की स्त्रियों में गर्भ रूप को प्राप्त हुए काला बाल देवकी में कृष्ण रूप से उत्पन्न हुआ और सफेद बाल रोहिणी में बलराम रूप से उत्पन्न हुआ। और वह पांचों इन्द्र पांच पाण्डव रूप से जन्मे हैं सव्य साची अर्जुन इन्द्र के अन्श से जन्मा है और भीम वायु के अंश से जन्मा है और सब से बड़े युधिष्ठिर धर्म के अंश से जन्मे हैं। और नकुल तथा सहदेव अश्विनी कुमारों के अंश से जन्मे हैं और शिवजी की रची हुई जो यह स्त्री रूप से स्वर्ग की दिव्य लक्ष्मी है वह ही यह द्रौपदी होकर आपके यज्ञ से अवतीर्ण हुई है। हे राजन् ! दैवयोग से ही सूर्य चन्द्रमा की समान कान्तिवाला अति सुन्दर रूपवती और एक कोश पर्यन्त जिसके शरीर का उत्तम गन्ध फैलता है ऐसी यह द्रोपदी तुम्हारी यज्ञ भूमि से अचानक ही उत्पन्न हुई है। हे नरेन्द्र ! तुम से प्रसन्न होकर तुमको यह वरदान देता हूं कि, तेरे दिव्य नेत्र होंगे उन दिव्य नेत्रों

से तुम इन पाण्डवों के तथा द्रौपदी के पूर्व के दिव्य और पवित्र रूप को देखोगे। तदनन्तर पवित्र कीर्ति वाले व्यासदेवजी के प्रसाद से दिव्य दृष्टि को प्राप्त होकर राजा द्रोपद ने पांचों पाण्डव और अपनी पुत्री द्रौपदी को दिव्य रूप में देखा उस समय पांचों पाण्डव दिव्य देहधारी सुवर्ण के मुकुट पहरे दिव्य माला धारी अग्नि तथा सूर्य की समान कान्ति वाले इन्द्र की समान तेजस्वी अनेकों आभूषणों से अलंकृत ताल वृक्ष के समान ऊंचे सुन्दर रूप और विशाल वक्षःस्थल वाले अनन्त शोभायमान निर्मल तथा दिव्य वस्त्र पहर कर खड़े सुगन्धित उत्तम पुष्प मालाओं को धारण करने वाले साक्षात् शिव की समान आदित्य वसुओं की समान और सर्व गुण सम्पन्न देखा।

पूर्व के इन्द्रों का रूप धारण करके पाण्डवों को तथा स्वर्ग की लक्ष्मी रूप से शोभायमान द्रौपदी को खड़े हुए देखकर राजा द्रुपद बड़ा ही अचंभे में होगया, ऐसी अपरमित माया को देखकर अपने मन में प्रसन्न होने लगा। राजा द्रुपद अपने मन में विचारने लगा कि सब स्त्रियों में श्रेष्ठ अद्भुत रूप वाली चन्द्र तथा अग्नि की समान कान्तीवाली दिव्य रूप धारिणी यह पुत्री, रूप, तेज और यश से इन पांचों की पत्नी होने योग्य है ऐसा मानकर अति प्रसन्न हुआ। तदनन्तर अति प्रसन्न होकर राजा द्रुपद ने सत्यवती के पुत्र व्यासमुनि के चरण छूए और कहने लगा कि हे महर्षे! आप में ऐसी विचित्र बात होनी कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि आप तपोधन और पवित्र यश वाले हैं। फिर व्यासदेवजी राजा द्रुपद से कहने लगे कि हे राजन! तपोवन में रहने वाले एक महात्मा मुनि की एक कन्या थी वह अति रूपवती और सती थी तो भी उसको कोई पती नहीं मिला तब उस कन्या ने उग्रतप करके शिवजी को प्रसन्न किया, तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उस कन्या को दर्शन देकर कहा कि तू वर मांग, तब उस कन्या ने वर देने वाले शिवजी से बार बार कहा कि मुझे सबसे श्रेष्ठ और गुणवान् पति दीजिये। यह सुनकर शंकर ने प्रसन्न होकर यह वचन कहा कि हे भद्रे! तेरे पांच पति होंगे। यह सुन कर वह कन्या शंकर को प्रसन्न करती हुई फिर कहने लगी कि हे शिव सकल गुण सम्पन्न मुझे एक पति आपसे चाहिये, तब देवों के देव शिवने कहा के हे कल्याणी मुझसे तैने पति दो, पति दो ऐसा पांच बार कहा था इसलिये मैंने तुझे पांच पति दिये हैं हे भद्रे! इसमें तेरा कल्याण होगा तू संदेह मत करे तेरे इस जन्म में नहीं किन्तु अगले जन्म में तुझे पांच पति मिलेंगे। सो हे द्रुपदराज! यह स्वर्ग की लक्ष्मी रूप ब्राह्मण की कन्या भयङ्कर तप करके पांचों पाण्डवों के लिये ही तेरे यहां यज्ञ से उत्पन्न हुई है। देवता भी जिसकी उपासना करते हैं ऐसी यह द्रौपदी देवी अपने कर्म से ही पांच पतियों की स्त्री होगी। और ब्रह्माने देव रूप पाण्डवों की पत्नी होने के लिये ही इसको रचा है इसलिये हे राजन! तुम इस द्रौपदी को इन पाण्डवों के लिये विवाह दो। तब राजा द्रुपद ने कहा कि हे महर्षे! आपके ये वचन मैंने पहले कभी नहीं सुने थे इसलिये ही मुझे इस काम में संदेह था परंतु द्रौपदी पांच पतियों की पत्नी है इस बात को जब विधाता ने ही रचदिया है तो फिर उसको कोई नहीं पलट सकता है। अतः इस विषय में ऐसा ही करना उचित है हमारा भी इसमें कोई दोष नहीं है। क्योंकि जब इस कन्या ने एक पति के लिये तप किया था परन्तु वह पांच पतियों का देने वाला होगया। पहले इस कृष्णा ने तप करके

शंकर से पांच बार मांगा था कि हे शंकर! मुझे वर दो तब शंकर ने ही इसे पांच पतियों का वरदान दिया है और इनके लिये कृष्णा की रचना की है तो फिर यह धर्म हो चाहे अधर्म हो इस बात को तो शंकर ही जानते हैं इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। इस कारण पांचों पाण्डव भले ही सुख पूर्वक द्रौपदी का पाणि ग्रहण करें।

कौन कहैगा

[रचयिता श्री श्याम विरही]

अरे आह आंसू बनकर अब, कह अब ढलक चले किस ओर।
है शून्य कुटिया फिर किसके-हित होते हो आत्म विभोर ॥

(२)

जिसके तड़पन से विचलित हो, होते हो इस तरह अधीर।
जिसकी मौन व्यथा में छन छन, जर्जर तिल तिल प्राण कुटीर ॥

(३)

आह! पड़ा हूं प्रेम जाल में, उनका वह प्यारा सन्देश।
कौन कहेगा वहीं जानते, पागल,-प्राण प्रिय सर्वेश ॥

मन

[ले०-श्री यमुना प्रशाद जी श्रीवास्तव]

'मन' आकाश की नाईं शून्य है। उसका रूप और आकार कुछ भी नहीं है। वह जड़ है और नाम मात्र के लिये मन कहाजाता है—

'नाम मात्रा वृत्ते व्योम्नि यथा शून्य जडाकृतें'।

परन्तु व्यवहार चलाने के लिये उसकी रूप की कल्पना करली है।

'शास्त्रीय व्यवहारोय युक्तं तद्रूपम्'।

और भी:—

'रूपन्तु क्षण संकल्पात्।

इस संकल्प किये हुये रूप को ही 'मन' कहते हैं।

'संकल्पनं मनोविद्धि संकल्पातेन भिद्यते'।

'संकल्प' कल्पना को कहते हैं। कल्पना मिथ्या होती है। अतः मन भी मिथ्या है। मन की धार अथवा वृत्ति को खयाल कहते हैं। खयाल माया का रूप है और वह भी मिथ्या है। मन और माया एक है और दोनों ही मिथ्या हैं। जिस प्रकार वे दोनों बाह्य जगत् में काम करते हैं उसी प्रकार आंतरिक जगत् में भी काम करते हैं। भेद केवल स्थूल और सूक्ष्म का है। यह जुदाई यहां केवल विचार की है और वह भी मिथ्या है।

'मिथ्या जग को सब कहें मिथ्या कथन विचार।

मिथ्या कहि मिथ्या फुंसे, मिथ्या मांहि विचार ॥
झांई में झांई पड़ी, झांई पड़ी न देख।
झांई झांई छल पड़े, दरसे अगम अलेख' ॥

मन हृदय कमल में रहता है। हृदय कमल कण्ठ से बारह अंगुल नीचे बांई ओर छाती में है। उसमें अति रमणीय पांचों छिद्र हैं। उनका मुंह नीचे को है। पूर्वछिद्र चक्षु-रूप, दक्षिणी छिद्र श्रोत-रूप, पश्चिमी छिद्र वाणी-रूप, उत्तरी छिद्र मनो रूप मध्यम छिद्र प्राण-रूप और मूल स्थान जिह्वा है। वक्षस्थल से लेकर कण्ठ तक की भूमि 'कमल-भूमि' कहलाती है।

शरीर तीन हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण।

इन तीनों शरीरों में पांच कोष हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। ये आत्मा को आच्छादित करते हैं इसलिये कोष कहलाते हैं। कर्मेन्द्रिय पांच हैं। हाथ, पांव, वाणी उपस्थ और गुदा। ज्ञानेन्द्रिय पांच हैं। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु जिह्वा और नासिका। प्राण पांच हैं। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान।

अन्तःकरण चार भागों में विभक्त हैं। मन बुद्धि, चित्त और अहंकार।

मन—यह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव की हुई वस्तुओं का खयाल करता है।

बुद्धि—यह उपरोक्त वस्तुओं और पूर्व खयालों अथवा संकल्पों के अच्छे अथवा बुरे होने का निर्णय करती है।

चित्त—यह बाहरी कारणों की अनुपस्थिती में पहिले देखी और सुनी हुई वस्तुओं का स्मरण करता है।

अहंकार—इसकी विद्यमानता में अंतःकरण वास्तव में पांच तत्वों का एक दिव्य और प्रकाशमय पुतला है। उसमें जीवात्मा का प्रकाश देदीप्यमान होता है। संस्कृत में उसे प्रतिबिम्ब कहते हैं। यही जीवात्मा है।

यह अंतः करण ही मनोमय कोष कहलाता है। पंच प्राण भीतर काम करते हैं और कर्मेन्द्रियां बाहरी काम करती हैं परन्तु पंच प्राण भीतर होने के कारण पहिले ही से प्रकाशित रहते हैं इसलिये वे मन के आधीन नहीं रहते परन्तु कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां मन के आधीन रहती हैं और उसकी प्रेरणानुसार काम करती हैं। इसी से मनका किया सब कुछ होता है और शरीर का किया कुछ भी नहीं होता। मनका जो निश्चय दृढ़ होजाता है वह अवश्य ही पूर्ण होता है किसी प्रकार नष्ट नहीं होता। हां! मन ही उलट जाय तब तो दूसरी बात है। मन कर्म रूप है। कर्म और मनमें कुछ भेद नहीं है। उनमें जो भेद भासता है वह कल्पित और मिथ्या है। मिथ्या कल्पनाएँ मूर्ख करते हैं। बुद्धिमान मनुष्य ऐसे कामों में अपना समय नष्ट नहीं करते। मन और कर्म इकट्ठे ही उपजते हैं। जैसे समुद्र की द्रवता से तरंगे उपजती हैं वैसे ही मन की फुरना द्वारा आत्मा से कर्म उपजते हैं और जिस प्रकार तरंगे समुद्र में विलीन होजाती हैं उसी प्रकार मन और कर्म भी आत्मा में विलीन होजाते हैं। मतलब यह कि जो पदार्थ दर्पण के निकट होता है उसका प्रतिबिंब दर्पण में दिखाई देता है। ठीक वैसे ही मन जो कुछ करता है वह आत्म रूपी दर्पण में प्रतिबिंबित होकर दिखाई देता है क्योंकि मन आत्मा के पास रहता है। अतः जो मनुष्य मन से मुक्त होता है वही मुक्ति है और जो मनसे मुक्त नहीं होता वह बन्धन में रहता है एक के नाश होजाने से दोनों ही नाश होजाते हैं। जैसे अग्नि के नाश होने से ऊष्णता भी नाश हो जाती है वैसे ही मनके नाश होने से कर्म भी नष्ट

होजाते हैं अर्थात् एक के अभाव से दोनों का अभाव होजाता है।

मन और कर्म एक हैं। मन और आत्मा में भेद नहीं है। मन रूपी बीज से ही संकल्प रूपी फल और उन फूलों से नाना प्रकार के शरीर होते हैं जिनके द्वारा जीवात्मा संपूर्ण जगत् को देखता है। मन में जैसी जैसी वासनाएँ होती हैं वैसे ही फल की प्राप्ति होती है अतः मनकी फुरना ही कर्मों का बीज है। मन कर्म रूप है। उसकी अनेक संज्ञाएँ हैं मन, बुद्धि अहंकार, कर्म, कल्पना, स्मृति वासना, अविद्या, प्रकृति और माया। मन जो जो व्यापार करता है वे सब जीवात्मा में दिखाई देते हैं जैसा कि बादलों के चलने पर चन्द्रमा, और नौका के चलने पर तट चलता हुआ दिखाई देता है। इसी तरह मन, बुद्धि, इन्द्रिय और देह तो चलते हैं परन्तु आत्मा चलता हुआ दिखाई देता है।

'बादल भ्रमहिं, न भ्रमहिं ग्रहादी,
कहहिं परस्पर, मिथ्या बादी॥'

× × × ×

नौकारूढ़ चलत जग देखा,
अचल मोह वश आपुहि लेखा॥'

यह संसार समष्टि रूप से रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श पांच तत्वों से बना है। रूप का स्रोत्र नेत्र हैं क्योंकि बिना नेत्रों के दिखाई नहीं देता। रसका स्रोत्र जिह्वा है क्योंकि बिना जिव्हा के खट्टे, मीठे का स्वाद नहीं मिलता। गंध का स्रोत्र नासिका है क्योंकि बिना नासिका के सुगन्ध दुर्गन्धि का ज्ञान नहीं होता, शब्द का स्रोत्र कान है क्योंकि बिना कानों के भले-बुरे शब्दों का ज्ञान नहीं होता। स्पर्श का स्रोत्र त्वचा है क्योंकि बिना त्वचा के स्पर्श का बोध नहीं होता। इस हिसाब से मनुष्य की पांचों ज्ञानेन्द्रियें मुख्य हैं और मनुष्य ही सूर्य की धूपके समान संसार रूप से फैला हुआ है। निद्रावस्था में उपरोक्त पांचों रस ज्ञानेन्द्रियों में और ज्ञानेन्द्रियें मनमें लीन होजाती हैं इसलिये मनही सबका स्रोत है। स्वप्नावस्था में भी मन इन पांचों रस, पांचों ज्ञानेन्द्रिय, तथा पहाड़, नदी, आकाश हाथी, घोड़ा, आदि की सृष्टि अपने भीतर ही करता है और स्वप्न नष्ट हो जाने पर वे सब उसी में लीन हो जाते हैं इससे स्पष्ट है कि जाग्रत संसार और स्वप्न-संसार दोनों ही मनके पसारे हैं। मन ही ने विषय बनकर संसार का रूप धारण किया है। घन सुषुप्ति में जिस समय आत्मा अपनी महिमा में अवस्थित रहता है। उस समय मन सूर्यास्त की किरणों के समान आत्मा में लीन हो जाता है और जिस समय जीवात्मा जाग्रत अथवा स्वप्नावस्था में आता है उस समय मन भी सूर्योदय की किरणों के समान आत्मा से निकलता है। अतः मनका स्रोत आत्मा है। आत्मा ही की शक्ति से मन शक्तिमान है। और उसी के भीतर सब कुछ है। उस वृक्ष की ओर देखिये वह कितना बड़ा और स्थूल काय है। उसका ज्ञान पहले पहल आपके मन को ही हुआ है। वह योंही तो आपके मन में समा नहीं गया उसे तो आपके मन ही ने सूक्ष्म रूप से अपने परमाणु समान क्षुद्र शरीर में रख लिया है परन्तु वह न तो सूक्ष्म काय वृक्ष है और न स्थूल काय वह तो सूक्ष्म संकल्प है और वह मिथ्या है। इस प्रकार आपके मन दो पदार्थ हैं एक 'संकल्प' और वह मिथ्या है। दूसरा 'मैं' और वह सत्य है। वही अविनाशी है। और आपका वास्तिक रूप है वास्तविक मतलब यह है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है।

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'

'मैं देख्यो निरधार यह जग कांचो कांचसों।
एकै रूप अपार प्रति बिम्बित लखियत जहाँ॥'

मन विचारों का बंडल, संकल्पों का भण्डार और माया का पिटारा है। उसी के भीतर सब कुछ है।

साधो! ऐसा कुंध अँधियारा।
इस मन अन्दर बाग बगीचे, इसी में सिरजनहारा॥
इस मन अन्दर सात समन्दर, इसी में नौलख तारा।
इस मन अन्दर हीरा मोती, इसी में परखन हारा॥
इस मन अन्दर अनहद गरजै, इसी में उठत फुहारा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! याही में जगसारा॥

और भीः—

अवधू अन्धा कूप अन्धियारा।
या मन भीतर सात समन्दर, याही में नदी नारा।
या मन भीतर काशी द्वारका, याही में ठाकुरद्वारा॥
या मन भीतर चन्द्र सूर्य हैं, याही में नौलख तारा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो! याही में सत्य करतारा॥

मन बड़ा चंचल है। सदा एक अवस्था में नहीं रहता। भटकता ही फिरता है। वह बड़ा हठीला और दगाबाज़ है।

देखिबे को दौरे तो सटकि जाय वाही ओर।
सुनिबे को दौरे तो रसिक सिरताज है॥
सूंघिबे को दौरे तो अघाय ना सुगन्ध करि।
खायबे को दौरे तो न धापे महाराज है॥
भोगिबे को दौरे तो तृपति हू न काहू होय।
'हनुमंत' कहै याको नेह हू न लाज है॥
काहू न कहो करे, अपनी ही टेक धरै।
मन सौं न कोऊ हम, देख्यो दगा बाज है॥

बिना शरीर के ही अपना काम करता हैः-
'बिन पद चलै सुनै बिन काना।
कर बिन कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिन बाणी वक्ता बड़ जोगी॥
तन बिन परस नयन बिन देखा।
ग्रहै घ्राण बिन बास अशेषा॥
अस सब भाँति अलौकिक करणी।
महिमा जासु जाहि नहिं बरणी॥'

और बड़ा लालची है।

'मन लोभी मन लालची, मन चंचल अरु चोर।
मन के मते न चालिये, पलक पलक मन और॥
मनदाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन हरिसों मिले, तो हरि मिलें निशंक'

शुद्ध और पवित्र मनमें ही भगवान विराजते हैं किसी ने कहा भी हैः-

'मन चंगा तो कठौती में गंगा'।

मन का निःक्लेशित रहना ही सच्चा सुख है मन तभी सुखी रह सकता है जब मनुष्य इन्द्रियों पर अपना पूर्ण अधिकार जमाले और सर्व अवस्थाओं में संतुष्ट रहे।

'सन्तोषः परमं लाभः सन्तोषः परमं धनम्।
सन्तोषः परमं चायुः सन्तोषः परमं सुखम्॥
सब सुख है संतोष में, धरिये मन संतोष।
मेक न दुर्बल होत है, सर्प पवन के पोष॥

इसलिये 'एक सिर और हज़ार सौदा' के खब्त को मनसे दूर करके एक रंग में रंग जाना चाहिये।

एक रंग में रंग रहो, कभी न बनो कुरंग।
सूरदास की कामरी चढ़ै न दूजो रंग॥

और भीः—

कै ममता कर रामपद, कै ममता कर हेल।
तुलसी! दो में एक अब खेल छाँड़ि छल खेल॥

इस राह पर चलने वालों का सदा कल्याण होता है।

'भक्ति' के प्रिय पाठको ! आप एक रंग में रंग जाइये और 'परमानन्द' का आनन्द लूटिये ।

राम नाम की लूट है लूटा चहै सो लूट ।
अन्त काल पछताओगे प्राण जायंगे छूट ॥

\+ + × +

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

बस ! अब बोलिये:—

भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्द कंद विन्दावन विहारी की जय ! जय !! जय !!!

भक्ति के प्रति

[ले०-श्रीमती ब्रजकुमारी 'प्रकाश' आश्रम]

अन्यों तरयोना ही रह्यो श्रुति सेवत इक अंग ।
नाक बास बेसर लह्यो बसि मुकुतन के संग ॥

आज स्वर्गस्थित महाकवि बिहारीलाल की प्रगूढ़ अनोखी उक्ति को जिसमें कि भोग में योग की स्थापना की गई है उसको पाठकों के तथा ईश्वर प्रेमियों एवं प्रकृति प्रेमियों के समक्ष में रखकर मनोभाव प्रकट करती हुई मनोरंजन करती हूं ।

यह अद्वितीय शृंगारी महाकवि वह कवि हैं जिनकी कवित्व प्रतिभा से मुग्ध होकर उनके उपयुक्त मुक्तक पद दोहे की निरुपम वाक्य विन्यास, पदावली, भुक्ति की झीने चंचल अंचल में भक्ति झिलमिल झिलमिल कर रही है ।

अर्थ-हे कर्ण फूल ! तू निरन्तर श्रुति (कान-वेद) का सेवन करने पर भी अब तक तरयोना भूषण-नहीं तरा) नहीं रहा । किन्तु देख बेसर (बुलाक) ने मुक्तों (मोती-योगी) का संग लेकर नाक (स्वर्ग, उन्नत) बास ले लिया ।

कवि का श्लेष अर्थ गत मुमुक्षु जन के प्रति संकेत है कि वेद शास्त्रों का अध्यन करने पर भी भवसागर से पार न हुआ परन्तु मुक्तजन सद्गुरों की भक्ति करने वाले भक्तों ने परमपद को प्राप्त कर लिया । देखिये ! प्रतिभाशाली कवि की गूढ़ोक्ति को किस सूक्ष्म इंगित द्वारा प्रबोधना की है । तरयोना भक्त के प्रति कैसी मधुर भर्त्सना है ।

समस्त संसार के मुमुक्षु जनों को वेदाध्ययन करने वालों में और सद्गुरुओं के शरणीजनों में कैसा अन्तर महन्तर दिखलाया है । भक्ति रसिकों को दूर न लेजाकर पास में ही युक्तियुक्त कलियुग की कलुषित भावना वाले विलासी तमावृत जनों को विज्ञप्ति देता है । वेद शास्त्रों के अध्ययन में चाहे समस्त आयु व्यतीत हो जावे और तीर्थ व्रत दान करोड़ों क्यों न किये जांय किन्तु विना सद्गुरु के शरणागत हुये सच्ची शांति नहीं प्राप्त कर सकता ।

ढ़ाई अक्षर प्रेम के पढ़ा सो पंडित होय ।

अन्यान्य ग्रंथों से क्या जिसने यह प्रेम अक्षर पढ़लिया वही सच्चा पंडित है । बिहारी के दोहे में संग, मुक्त दो विशेष शब्द हैं जिनका तथ्यांश संत्संग और सद्गुरु प्राप्ति है क्योंकि हम देखते हैं संसार के छोटे से छोटे कार्य में शिक्षक (गुरु) की आवश्यकता रहती है । फिर इस विशाल जगदार्णव से पार होने के लिये तो सद्गुरु की अत्यन्तावश्यकता है । बहुत से मनुष्य संसार में वेद स्मृति उपनिषद् आदि का

अवलोकन मनन करते हैं किन्तु उनके हृदय में शान्ति नहीं होती है और वह उस को नहीं पाते जो कि उनका अभीष्ट है।

एक सज्जन बड़े वेद पाठी थे जिन्होंने श्रुति, स्मृति, उपनिषद् आदि का भली प्रकार से अध्ययन किया था किन्तु वह उस ज्ञान से सन्तुष्ट न थे उन्हें सदा शंका ही रहती थी। दैव संयोग से एक महात्मा से उनकी भेंट होगई उन्होंने विनम्र वाणी से महात्मा के समक्ष में अपनी शंका प्रकट की कि महाराज! मैंने ग्रंथों का बहुत अवलोकन किया है किन्तु यह जीव ब्रह्म की बात मेरी बुद्धि में नहीं आती।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादुअत्ति अनश्नन्योऽभिचाक शीति॥

दो पक्षी मित्र भाव से एक वृक्ष पर रहते हुये किस प्रकार और क्यों भिन्न है अर्थात् वह जीव क्यों संसार में लिपायमान और दुःखी है जब कि वह उसका मित्र है। महात्मा ने कहा कि यह विषय नितान्त गूढ़ है जो जानता है वह कहता नहीं जो कहता है वह जानता नहीं बुद्धि से नहीं जाना जाता अनुभव गम्य है। माया रूपी वृक्ष में पुरुष अज्ञान से निमग्न है तभी वह जीव कहलाता है और सांसारिक यंत्रणाओं से बद्ध है। सयुजा सखाया जो कहा है वही उसमें ब्रह्मत्व है क्योंकि वह उसका रूप है उसमें मिला हुआ है वह ब्रह्म ही है। वास्तव में दो नहीं एक ही है सयुजा कहा गया है किन्तु अज्ञान से वह दो रूपों में भासता है तब उसकी दो संज्ञा होजाती है। जिस प्रकार समुद्र में तरंगें प्रवाहित होती हैं उनका नाम समुद्र नहीं तरंगे ही हैं, वह समुद्र नहीं किन्तु वह उसमें ही विलीन होती है तथा प्रकट होती हैं और निरन्तर ही होती रहती हैं, वह समुद्र से भिन्न नहीं समुद्र ही तरंग है और तरंग ही समुद्र है। उसीका वह रूपान्तर है इसी प्रकार जीव और ब्रह्म हैं। सागर का नाम विशाल रूप में आता है और तरंगों का लघु रूप में। तरंगों का कार्य है उत्थान और पतन, किन्तु समुद्र का यह कार्य नहीं वह गहन गंभीर तथा मर्यादा वाला कहाजाता है उसका महत्व तरंग से विशेष है। इसीप्रकार जीव का अन्तर और महदन्तर है। और तरंगवत् ही जीव ब्रह्म का एकत्व है।

यह एक ज्ञान विषय गहन निगूढ़ तम है जिसको कि प्रत्येक प्राणी प्रत्येक समय व अवस्था में प्राप्त नहीं कर सकता इससे भक्ति श्रेष्ठ है जो कि प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक समय में सब कर सकते है। ज्ञान और भक्ति में यह अन्तर है जैसा कि किसी लक्ष पर पहुंचना। एक दुस्तर, गहन वन प्रदेश को पार कर बिना मार्ग अपने लक्ष्य (घर) पर चिरकाल में प्राप्त होना दूसरे भक्ति जो सीधा सरल पथ पर चल कर अपनी यात्रा पूरी कर लक्ष्य पर पहुंचना कितना सुगम कार्य है।

यद्यपि भक्ति सुगम है किन्तु पात्र में ही पदार्थ निहित होता है।

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

१०३८. यदि तुम्हारे अन्तर कुछ अच्छे गुण हैं तो याद रक्खो दूसरों में इनसे भी अधिक हैं। इससे तुम्हारे चित्त में नम्रता आवेगी। संसारी पुरुष अपने आपको बहुत बड़ा समझता है वह समझता है जो तेरे बराबर बुद्धि और सम्पत्ति में अन्य कोई नहीं है इससे दम्भ और दर्प की अधिकता होती है।

१०३९. पवित्रता में अनेक गुण हैं। इससे नम्रता, सहन शीलता और विचार उत्पन्न होता है और ऐश्वर्य भावों की उत्पत्ति होती है।

१०४०. सत्य ही परमात्मा है, परमात्मा सत्य पदार्थ है। यह सत्य नित्य, अविनाशी, निर्विकार और एक रस है। वह स्वयम्भू, स्वयं प्रकाश और स्वतंत्र है। वह अनादि और अनन्त है, वह भूत, वर्तमान और भविष्यत में सम रहने वाला है। वह ज्ञान स्वरूप, कारण से रहित और देश व काल से अतीत है। वह एक है, अखण्ड और अपरिच्छिन्न है।

१०४१. शंकराचार्य जी जो कि वेदान्त सिद्धान्त को प्रकाशित करने में सूर्य तुल्य हुए हैं उन्होंने विवेक चूड़ामणि नाम की एक पुस्तक लिखी है मुझे उसके पढ़ने का बड़ा चाव रहता है। इसमें वेदान्त का तत्त्व है। इसकी शैली सरल और प्रवाह युक्त है। मैं इस पुस्तक को सदैव अपने साथ रखता हूं। इस पुस्तक ने मुझे सान्त्वना, शान्ति और तसल्ली दी और अध्यात्मिक शक्ति प्रदान की। यह आदर्श पुस्तिका है। जो वेदान्त का अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए भी और उच्चकोटि के मनुष्यों के लिए भी यह बहुत लाभ दायक है।

१०४२. महत प्रकृति का विकृत रूप है। महत बुद्धि है। यह दो प्रकार की है व्यष्टि और समष्टी। समष्टी महत ब्रह्म या कर्ता है। यदि चित्त में वासनाएं रहेंगी तो बन्धन रहेगा और यदि चित्त सब प्रकार की वासनाओं से शून्य होगया है तो मोक्ष अवश्यमभावी है।

१०४३. मुमुक्षु को चाहिए दीर्घ काल तक वासना क्षय, मनो नाश और तत्त्वज्ञान का अभ्यास करे। यह बात चित्त से कभी हटने न दे। यदि इनमें से एक का भी निरन्तर दीर्घकाल तक अभ्यास किया जावे तो फल से निवृत्ति हो सकती है।

१०४४. जिसने अपनी इन्द्रियं, प्राण और मनको वश में करलिया है उस योगी को सिद्धियों की प्राप्ति आपही होजाती है परन्तु यह सब आत्म साक्षात्कार में रुकावटें हैं। इनसे योगी का चित्त डांवाडोल होजाता है। साधक को बहुत सावधान रहना चाहिए। सिद्धियों को तुच्छ समझ कर त्याग देना चाहिए और उनकी तरफ दृष्टि नहीं करनी चाहिये।

१०४५. जप और ध्यान आसन व प्राणायाम से अधिक आवश्यक हैं। मैं विराट रूप भगवान की सेवा कर रहा हूं, इस भाव से नित्य प्रति निष्काम भाव से समाज की सेवा अग्नि-होत्र का स्थान ग्रहण कर सकती है, और इससे शीघ्र ही चित्त शुद्धि हो सकती है।

१०४६. वैराग निस्सन्देह वह मानसिक अवस्था है जो विवेक और विचार के खड्ग द्वारा मोह और सब प्रकार की आसक्ति और वासनाओं के छेदन करने से प्राप्त होती है।

१०४७. एक फारसी भाषा का कवि, एक दिल्ली का बनिया, अयोध्या का वैरागी मिलकर बद्री नारायण की यात्रा कर रहे थे। देव प्रयाग के पास गंगा और अलखनन्दा का संगम होता है, वहां एक बुलबुल बड़े मीठे स्वर में गा रही थी। फारसी के कवि ने कहा चिड़िया यह गा रही है "सुभान तेरी कुदरत" तेरी कुदरत कितनी शानदार है ? बनिए ने कहा, चिड़िया यह कह रही "हींग, नून अदरक" वैरागी ने कहा चिड़िया यह कह रही है "राम, सीता, दशरथ" यद्यपि सब मनुष्यों में मन एक ही है परन्तु उनकी विचार धारा प्रथक २ है। मनोवृत्ति स्वभाव और संस्कार भिन्न २ मनुष्यों के भिन्न २ होते हैं। एक फिलासफर गन्दे और चित्त को दुखाने वाले शब्दों से भी विचारयुक्त भाव बना-लेता है।

१०४८. वकील, डाक्टर अपनी बुद्धि को श्री हरि के चरणारविन्द के ध्यान में लगाने की बजाय, स्कीमें बनाने, षडयन्त्र घड़ने और जूआ आदि में लगाकर बुद्धि का व्यभिचार करते रहते हैं। जिस प्रकार मेरी अज्ञानी बहनें अपने चेहरे पर पाउडर लगाकर खिड़कियां खोल कर बाजारों में बैठी रहती हैं उसी प्रकार यह कालर टाई आदि लगाकर अपने मक्किलों और बीमारों की बाट जोहते रहते हैं। पवित्र युवा बुद्धि को श्रीहरि के चरणों में लगाना चाहिए। यह उत्तम फूल और श्रेष्ठ भेट है। एक जड़ रूप गुलाब के फूल को परमात्मा की भेंट चढ़ाने से क्या लाभ है ?

१०४९. इच्छाओं के निवृत्त करने से, एक या २ घण्टे मौन धारण करने से, घण्टा दो घण्टा एकान्त में बैठने से, प्राणायाम करने से, प्रार्थना, करने से, नित्य प्रति विचार और ध्यान का समय बढ़ाने से लाभ होगा ।

१०५०. रात को ध्यान करना बहुत आवश्यक है, यदि तुमको अधिक अवकाश नहीं मिलता है तो रात्रि को १५ मिनट ही अभ्यास करलेना चाहिए। रात को अभ्यास करने का फल यह होगा कि बुरे स्वप्न नहीं आवेंगे और निद्रा में भी पवित्र विचार रहेंगे कारण ध्यान से अच्छे संस्कार बनेंगे॥

१०५१. आरम्भ करने वालों को ६ मास तक साधारण रेचक व पूरक प्राणायाम करने चाहिएं। जिज्ञासुओं को चाहिए इस बात का दृढ संकल्प करें कि या तो साक्षात्कार करेंगे या प्राण त्याग करेंगे।

१०५२. जो दुःखों के कारण आत्महत्या करता है उसका कर्म्म अपवित्र है। जो अहंकार, स्वार्थ, वासनाएं इन्द्रियों और अपने बुरे विचारों का दमन करता है वह पवित्र त्याग है।

१०५३. एक वर्ष लघु सिद्धान्त कौमुदी, और भाण्डारकर की व्याकरण के दो भागों का अध्ययन करो। दो वर्ष संस्कृत के काव्य शिशुपाल वध, किरातार्जुनीय, मेघदूत, शकुंतला, रघुवंश, और कुमार सम्भव को पढ़ो और न्याय की पुस्तकें भाषा परिछेद को पढ़ो, तब तुम वेदान्त सूत्र और उपनिषदों को समझने के योग्य हो जाओगे। १२ वर्ष तक न्याय और सिद्धान्त कौमुदी में रगड़ा लगाकर अपनी शक्ति का दुरुपयोग मत करो। आत्म साक्षात्कार किए बिना शुष्क पण्डित बनने से क्या लाभ है ? शुष्क पण्डित उस गधे के तुल्य है जो अपनी पीठ पर चन्दन की लकड़ियों का भार उठाकर ले जाता है।

आंख मिचौनी

(रचयिता श्री वैकुण्ठ प्रसाद "आर्यरत्न")

खेलो तो कबतक खेलोगे ! आंख मीच तू इधर उधर हो ।
छिपके प्रभुवर ! क्यों कर तू ! मैं खोजूं तू छिपते फिरते ॥
आओ प्रभुवर ! आजाओ तुम !
क्या सचमुच तुम अब न मिलोगे, खेलो तो कब तक खेलोगे ।
आंख मिचौनी खेल खेलाते, भक्तों को यह दृश्य दिखाकर ।
तूने मुझको खेल खेलाया, रचना माया की क्यों रच कर !
आंख मिचौनी ही खेलोगे, खेलो तो कब तक खेलोगे ?

सृष्टि–क्रम

एकबार महात्मा विदुर दुर्योधन से तिरस्कृत होकर तीर्थयात्रा को चल दिये । वहां वल्कल पहिन कर रूप को छिपाये अवधूत भेष बनाये वे ऐसा व्रत करने लगे जिससे भगवत् प्रसन्न हों । इस प्रकार विचरते विचरते बहुत दिन व्यतीत होगये, उस समय राजा युद्धिष्ठिर पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णचन्द्र की सहायता से पृथिवी पर एक छत्र राज्य करते थे । जैसे बांसों के वनों में बांसों के रगड़ने से अग्नि निकल कर बांसों को जलाकर निवृत्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रभास क्षेत्र में अपने सुहृद् कौरव पाण्डवों का विनाश सुना कि परस्पर ईर्ष्या करके भस्म होगये, तो उनका अत्यन्त शोक किया फिर सरस्वती के निकट जितने तीर्थ हैं उनमें विचरते हुये अनेक ऋषियों के आश्रमों में होते हुये यमुना जी के तट पर पहुंचे । वहां पर परम भागवत् उद्धव जी को देखा । उन से मिल कर भगवान् श्री रामकृष्ण भगवत् की प्रजा और अपने इष्ट मित्रों की कुशल पूछी । श्रीवृन्दावन विहारी के विरह में उद्धव जी सब सुधि बुधि भूल गये । फिर धीरे धीरे भगवत् के ध्यान से सन्देहानुसन्धान में आ, अश्रुनिवारण कर, शोक तज, उद्धव जी विदुर जी से बोले कि " हे विदुर जी । हमारे नेत्रों के तारे श्रीकृष्ण रूप सूर्य अस्त होगये" । इतना सुनकर विदुर जी को अत्यन्त शोक हुवा, सब दिशायें शून्य होगईं, पश्चात् कुछ अपने आपको सम्भाल कर पूछने लगे कि हे उद्धव जी ! आत्मा का एकान्त में प्रकाश करने वाले परंज्ञान योगीश्वर श्रीकृष्ण महाराज ने आपसे जो ज्ञान कहा वह ज्ञान आप हमसे कहिये । तब उद्धव जी ने कहा कि वह ज्ञान तत्त्वों की सुन्दर सिद्धि के ज्ञाता मैत्रेय जी जी आपको सुनावेंगे । यह सुनकर विदुर जी वहां से चलकर हरिद्वार में मैत्रेय जी के पास आये ।

और उनको दण्डवत प्रणाम कर विदुर जी बोले:-

विदुर-सब सुखके अर्थ कर्म करते हैं, परन्तु न सुख मिला न दुःख का विनाश हुवा, इस प्रकार सारा जन्म दुःख में ही व्यतीत हुवा। अतः आप मुझे करने योग्य सुखका मार्ग बतावें जिससे पुरुषों के हृदय में भगवान् वासुदेव स्थित हों और और भगवद्भक्ति से पवित्र हृदय में अनादि वेद प्रमाण सिद्ध तत्त्व जानें। माया के नियन्ता स्वतन्त्र भगवान् अवतार धारण कर जिन कर्मों को करते हैं निष्क्रिय होकर ईश्वर ने जिस प्रकार से प्रथम इस संसार को रचा, पीछे स्थिरता से जगत् की वृत्ति का विधान किया। फिर अपने हृदयाकाश में इसको स्थिर करके सब वृत्तियों से निवृत्त होकर अन्तःकरण में सोते हैं और फिर जब सर्जन काल आता है तब योगीश्वरों के ईश्वर इस विश्व में प्रविष्ट होकर बहुत से होते हैं। ब्राह्मण गौ और देवताओं के क्षेम के लिये अवतार भेद से विहारकारी कर्म करते हैं। सुन्दर यशस्वियों में मुकुटमणि श्रीनारायण के चरित्रामृत पान करने से हमारा चित्त तृप्त नहीं होता। सब लोकों के नाथों के अधिपति ने जिन तत्त्वों के भेद से लोक और अलोक सबकी कल्पना की। हे विप्रवर! जिस प्रकार से प्रजा के आत्मा कर्म रूप नाम भेद, विश्व रचने वाले स्वतः सिद्ध नारायण ने प्रकट किये सो आप हमसे वर्णन कीजिये। हे भगवन्! श्रीकृष्ण जी की कथामृत पान के बिना जिनके मुख मलीन होरहे हैं उन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रों के धर्म व्यास जी से बार बार सुने हैं परन्तु उनके श्रवण करने से हमारी तृप्ति नहीं हुई। मैं शोच्य नरों को और शोच्यों के भी शोच्यों को शोचता हूं। शोच्य उसको जानना चाहिये कि, जो भारत के तात्पर्य को नहीं जानते। और जो जान बूझ कर श्री भगवान् की कथा से विमुख हैं वह शोच्यों के भी शोच्य हैं। अर्थात् जिन्होंने वाणी से आदि पुरुष नारायण का नाम नहीं लिया, देह से चल कर प्रधान २ ईश्वर के धामों में पांव नहीं दिया, और मनसे श्रीकृष्ण चन्द्र का ध्यान नहीं किया। इसलिये आप कृपा करके संसार सुख दायक श्री व्रजनायक नारायण की कथा कहो।

मैत्रेय-हे साधो! आपने सब संसार के जीवों पर अनुग्रह करने हारी और कीर्ति बढ़ाने वाली अति सुन्दर बात बूझी है। भगवान् को सदा तुम प्यारे तो हम तुमसे उत्पत्ति, संहार, पालनकर्ता भगवान् की लीला विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं। आदि पुरुष अविनाशी भगवान् सबसे पहिले थे। उस समय यह ईश्वर, सर्व द्रष्टा, एक, सर्व शक्तियां जिसकी जागती रहती हैं परन्तु इन वैभव को कोई देखने वाला नहीं, सब शक्तियां अपने आप में लीन हैं उस समय सर्वद्रष्टा एक मात्र जिसकी शक्ति जागती है इस प्रकार यह ईश्वर रहता है। उस समय कामना हुई कि हम बहुत रूप होकर अपने को देखें। हे महाभाग! तब सर्वद्रष्टा परमात्मा की कार्य कारण रूपिणी माया महाशक्ति अनुसन्धान रूपा हुई, उससे समर्थ ईश्वर ने सब संसार को रचा। गुणमयी काल की शक्ति से माया में पुरुष रूप धरके परमेश्वर ने वीर्य को धारण किया। काल प्रेरित अव्यय माया से महतत्त्व प्रकट हुवा, तमोगुण नाशक विज्ञान आत्मा जीव के देह में स्थित होकर विश्व का प्रकाश किया। सो जीव अंश, अणु, काल, आत्मा भगवत् की दृष्टि के सम्मुख इस जगत् को रचने के कारण जीवात्मा ने अपने आत्मा का रूपान्तर किया। जब महतत्त्व विकार को प्राप्त हुवा तब अहंकार उत्पन्न हुवा, जो कार्य, कारण, कर्ता इनका आश्रय और पञ्चभूत

इन्द्रिय मनोमय हुवा। वह अहंकार वैकारिक, तैजस, तामस भेद से तीन प्रकार का हुवा। अहंकार विकार को प्राप्त हुवा तब विकारी अहंकार से मन हुवा वैकारिक देवता हुवे, उन से शब्दादि गुण प्रकाश हुवा, जिससे रज, सत्व, तमोमय ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं। तैजस अहंकार के ज्ञान कर्ममय इन्द्रियें हुई। तामस अहंकार से पञ्चभूत सूक्ष्म आदि आकाश व्यापक का चिह्न हुवा 'आकाशं शरीरं ब्रह्मेति श्रुतेः' कालमाया के अंश योग से भगवत् से देखा हुवा आकाश के पीछे स्पर्श हुवा स्पर्श के विकार से पवन प्रकट हुवा। अकाश के बलसे जब वायु विकार को प्राप्त हुवा तब उसकी मात्रा सहित सब लोकका लोचन प्रकाशप्रकट हुवा। ईश्वर के देखने से पवन सहित ज्योति जब विकार को प्राप्त हुई तब काल माया के अंशों के योग से रसमय जल उत्पन्न हुवा। ब्रह्म की इच्छा से ज्योति द्वारा जल सहित काल माया के अंशों के योग से गन्ध गुण वाली पृथिवी उत्पन्न हुई। हे विदुर! आकाशादिक पञ्च भूतों को जो पर अपर हैं परम संग से यथा क्रम गुणों को जानों। आकाश का गुण शब्द, वायु का गुण स्पर्श, तेज का गुण रूप, जलका गुण रस है परन्तु पृथिवी में सब गुण होते हैं। काल माया अंश रूपी विष्णु की ये सब देवता कला हैं। भान्ति २ के रूप होने से जब ब्रह्माण्ड को रचना करने में समर्थ हुवे तब हाथ जोड़ कर सबने परमात्मा की स्तुति की।

नमाम ते देव पादारविन्दं, प्रपन्नता पोषशमातपत्रम्।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु, संसार दुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति॥
धातर्यदस्मिन्भव ईश जीवास्तापत्र येनोपहता न शर्म।
आत्मं लभंते भगवंस्तवांघ्रिछायां सविद्यामत आश्रयेम॥

हे शरणागततापनाशक! सत्व रूप आपके चरणारविन्द को हे नाथ! हम बारंबार नमस्कार करते हैं। आपके चरण कमल के आश्रित हो यती लोग संसार समुद्र के पार हो जाते हैं। हे धातः! हे आत्मन्! हे ईश! हे भगवन्! तीन तापों से दुःखी जीव इस संसार में सुखको प्राप्त नहीं होते हैं। इस कारण विद्या सहित तुम्हारे चरणों की छाया का आश्रय लेते हैं। जिन चरणों से भगवती भागीरथी प्रकट हुई, जिनका जल पाप, ताप नाशक है, जो नदियों में श्रेष्ठ है, उन गंगाजी के स्थान आपके चरण कमलों की शरणागत हो ऋषि लोग एकान्त में बैठकर तुम्हारे मार्ग को खोजते हैं।

रचन हेत ब्रह्माण्ड के हमको उत्पन कीन्ह।
ज्ञान शक्ति अब देहु प्रभु हम तुमरे आधीन॥

उस समय काल संज्ञा शक्ति को ईश्वर ने धारण कर तेइस तत्त्वों के गण में एक संग प्रवेश किया। सो भगवान् चेष्टा रूप से उस तत्त्वात्मक गण में प्रवेश कर फिर सुप्त कर्मों को बोधन करते अलग २ जो देवगण थे उनको एकत्र कर दिया। ईश्वर की प्रेरणा से जागकर तेईस तेईस तत्त्वों के गणने अपने अंशों से विराट् देह को उत्पन्न किया जिसमें ईश्वर ने अपने अंशों से प्रवेश किया, इसमें चराचर लोक हैं।

अपूर्ण

तेरा ही सहारा है

द्रौपदी के प्रेम काज लाज ढाकी राखी तुम,
सभा मध्य दुःशासन खींचत चीर हारा है।
प्रेम ही के कारण तुम पारथ के सारथि हो,
रण मध्य उपदेश गीता पसारा है॥
सखा सुदामा के प्रेम में विह्वल हो,
खाये तुम तंदुल चाहि सकसु दै डारा है।
वोही प्रेम एक बार "विकसित" हद हो दयालु,
दास पै दिखादे एक तेरा ही सहारा है॥

———

प्रज्ञाबल का प्रतिबिम्ब

[ले०—विद्याभूषण पं० मोहन शर्मा 'विशारद']

१-यदि तुम किसी उत्तम सिद्धान्त को लोगों के व्यवहार के लिये प्रचारित करना चाहते हो, तो सर्व प्रथम यह अनिवार्य आवश्यकता है कि तुम स्वयं उसको नियमित आचार में लाने के अभ्यासी बनो। तभी दूसरों पर उस सिद्धान्त का जीवित प्रभाव पड़ेगा मानव जाति सदैव से अनुकरणशील रही है। तुम्हारे सिद्धान्त का लोग उसी समय अनुसरण करेंगे जब तुम खुद अपने को उसके आदर्श स्वरूप बनालोगे।

२-किसी भी कार्य में पूर्ण जय प्राप्त करने के लिये धर्म भावना और ईश्वर विश्वास की रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। यदि तुम उसकी रक्षा में असमर्थ रहे, तो तुम्हारा सब प्रयत्न निष्फल जायगा।

३-हमारी वर्त्तमान दुर्दशा का एक मुख्य कारण हम लोगों का सत्य सनातन नियमों से विमुख हो जाना है। यदि लोग पुनः नियमों को अपनाने की ओर झुकाव देना आरम्भ करें, तो पूर्व सुख समृद्धि फिर लौटाई जा सकती है।

४-उस पारब्रह्म परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को जानना हो तो पहिले पिण्डपति को जानने के प्रयासी बनो,। पिण्ड का वास्तविक ज्ञान योगाभ्यास के बिना नहीं हो सकता। योगाभ्यास द्वारा इस भौतिक शरीर को कोयले के सदृश बना दो। जो कि आगे चलकर उस अग्निरूपी ज्योति में मिलते ही अपना अस्तित्व मिटा देगा।

५-नीति की समीचीन उन्नति का वही समुच्च शिखर है, जहां पर अपकार के ऊपर निरन्तर उपकार ही साधित हो।

६-किसी महान कार्य की साधना के निमित्त ईश्वर प्रार्थना विशेष रूपसे आवश्यक है। प्रभु प्रार्थना से मनुष्य को उत्तम आदेश प्राप्त होकर मार्ग की विघ्नबाधा में दूर होती हैं और वह सफलता के समीप पहुंचता है।

७-यदि किञ्चित् मात्र सत्य की प्राप्ति में सर्वस्व भी लगादेना पड़े, तो वैसा करने में पश्चात्ताप, दुःख और झिझक का अनुभव करना मूर्खता है।

८-तुम अपनी जीवन नौका को उस दिव्य महासागर में, जो शान्त और ओजसतत्व से ओत प्रोत है, बहने के लिये छोड़दो। और पतवार तथा पाल रूपी मन, वाणी किम्बहुना कर्म रूपी यन्त्रों को ऐसी स्थिति में लाने का उद्योग करो, कि नौका की गति सत्यता, अहिंसा और पवित्रता की ओर हो जाय।

९-मनुष्य अपनी आदतों, व्यसनों और बुरी भावनाओं का क्रीतदास न बनें। वरन इन सबको अपने प्रभू का दास बनावें। मानव जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करने का यही सरल साधन है।

१०-आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिये इस शरीर को उसी तरह कसने की जरूरत है जिस तरह की सोना कसौटी पर चढ़ाया जाता है। बिना कसौटी पर कसे आत्मा की प्रतीति नहीं हो सकती। यद्यपि स्वच्छ, सुन्दर और सुशीतल जल पीने के लिये तुमको अनेक प्रकार की कठिनाइयां झेलते हुए बावड़ी खोदने को गहराई तक उतरना पड़ेगा किन्तु जहां थोड़ा भी जल का सम्पुट प्रवाह हुआ कि बावड़ी उससे तुरन्त ही परिपूर्ण हो उठेगी।

११-फलाकांक्षा से प्रेरित हो किसी भी कार्य को हाथ में लेना गर्हित पाप है। मनुष्य को अहोरात्र विवेक पूर्वक कर्म में लिप्त रहना चाहिये। फल देना न देना इस परात्पर परमेश के हाथ में है।

१२-यह शरीर पानी में उठते हुए बुलबुले के समान क्षणस्थायी है, यह जानकर भी मनुष्य पुण्य कर्मों की साधना के लिये सावधान नहीं होते हैं।

१३-इस संसार में जीवनावधि मुख्य रूप से तीन बातों का ही स्मरण रखना है। दक्षिणा, ध्यान और ज्ञान।

१४-संसार में विषय भोग और धनादि पदार्थों की इतनी प्रबलता है, कि मृत्यु की अन्तिम घड़ियों तक मनुष्य से उनका मोह नहीं छूटता। ज्ञानवान पुरुषों को यह विकट भेद भली भांति समझ लेना चाहिये।

१५-मनुष्य की आयुष्य और धन दोनों अविश्वास की वस्तुएं हैं। जब धन जाने वाला होता है तो कहीं से भी मार्ग बनाकर चला जाता है, और आने वाला होता है तब किसी भी द्वार से अनायास आ पहुंचता है। ज्ञानी पुरुष इनके प्रति मोह नहीं करते और उस परम प्रभु की पद वन्दना में सदा लीन रहते हैं।

अपार-माया

[ले०—श्री रमेश]

संत, थके औ महन्त, थके सन्यासी थके औ थके ब्रह्मचारी।
योगी, मुनीश्वर, सारे थके अरु वेद, पुरानन, नेति पुकारी॥
शेष, सुरेश, गणेश, थके ब्रह्मा हू थके औ थके त्रिपुरारी।
ऐसी रमेश की माया अपार को पार लखै केहि भांति अनारी॥

भगवत् स्वरूप, प्रमाण व प्राप्ति

क्लेशादि से, असम्बद्ध जीवों से विलक्षण ईश्वर है। जो क्लेश (दुःख) देते हैं, अविद्या, अस्मिता (अहंकार) अस्मिता आदि क्लेश है। कर्म तीन प्रकार के हैं:— १—विहीत, २—प्रतिषिद्ध, ३—मिश्र, अर्थात् वे जिन का वेदों में विधान है, तथा जो मिले हुए हैं। जाति, आयु, भोग (जो आगे आवेंगे) ये कर्मों के फल 'विपाक' कहे जाते हैं, फल के विपाक तक चित्त में होने के कारण उनका 'आशय' यह नाम है, अर्थात् वासनात्मक संस्कार को 'आशय कहते हैं। इन क्लेशादिकों से जो अपरामृष्ट तीनों कालों में सम्बन्ध शून्य और जीवों से विलक्षण है वह भगवत तथा ईश्वर कहलाता है। वह अपनी इच्छामात्र से सब जगत् का उद्धार करने में समर्थ है। यद्यपि सब ही जीवों में वास्तविक क्लेशादि नहीं है, तथापि चित्त में रहने वाले क्लेशादिकों का जीव के साथ औपाधिक सम्बन्ध है। ईश्वर में तो औपाधिक भी क्लेशादि का सम्बन्ध नहीं अतः भगवद् ही सदैव जीवों का आश्रय है। उपनिषदों में लिखा है कि:—

'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते,
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च॥

अर्थ— उस का न कोई देह है, न इन्द्रियां हैं। न उसके कोई बराबर है, और न उससे बड़ा है। उसकी उत्कृष्ट शक्ति अनेक प्रकार की अनादि से सुनी जाती है, और (उसकी) ज्ञान बल, क्रिया ये तीनों स्वाभाविक हैं, अर्थात् नित्य हैं। प्रलय का मरने वाला अवधि पर फिर सृष्टि का बनाने वाला जो है वह भगवत् परमात्मा है। भगवद् तथा ईश्वर का स्वरूप संक्षिप्त से कह कर प्रमाण (अनुमान) कहते हैं:—

उस भगवद् भगवान् में सर्वज्ञता का बीज, (सर्वज्ञता का कारण होने से बीज के सदृश बीज अर्थात् (कारण) भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञान का अल्पत्व, महत्व, निरतिशय है अर्थात् अवधि को प्राप्त होगया है। जो सातिशय अल्पत्व, महत्वादि धर्म हैं, उनकी अवधि देखी गई है जैसे

परमाणुओं में अल्पत्व की और आकाश में महत्व गुण की। ऐसे ही उच्च नीच भाव से देखे हुए ज्ञानादि चित्त के धर्म, कहीं निरतिशय हैं, वह ईश्वर है और सर्वज्ञतापरक है। क्योंकि किसी पुरुष को २० पदार्थ का ज्ञान है, किसी को १०० का, किसी को अधिकता, ऐसे बढ़ता हुआ ज्ञान जहां समाप्त होजाय अर्थात् निरतिशय हो वह ईश्वर है। जैसे किसी का परिमाण छोटा है, किसी का बड़ा, किसी का उस से भी बड़ा, पर सबसे बड़ा परिमाण, आकाशादि में अवधि को प्राप्त हो जाता है। वैसे ही सब पदार्थों के ज्ञान की जहां अवधि होजाय जिससे बढ़कर किसी में ज्ञान न हो वह भगवत् तथा ईश्वर ही है पुरुष में पदार्थ प्राप्ति की इच्छा होती है इस कारण वह प्रकृति में बंध जाता है, और ईश्वर में इच्छा नहीं होती इसलिए वह असंग परमात्मा कहा है वह आदि अनन्त पूर्व होने वाले ब्रह्मादिकों का भी गुरु है।

वृत्तियों से अभाव के कारण (पर-वैराग्य) का अभ्यास, उपाय है जिसका, और अपने ही संस्कार वाली असम्प्रज्ञात समाधि है। वितर्कादि की चिन्ताओं को छोड़ने का नाम 'विराम' है। उस विराम रूपी प्रत्यय ज्ञान का अभ्यास अर्थात् बार बार चित्त में बैठाना जिस के पूर्व हो, अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि पूर्वक हो। पहले सम्प्रज्ञात समाधि में कोई वृत्ति उठती है, उस वृत्ति का भी 'नहीं नहीं' इस प्रकार निरन्तर अभ्यास होने से, अर्थात् उसके नाश के अभ्यास से 'असम्प्रज्ञात' समाधि होती है, उस असम्प्रज्ञात में कोई ज्ञेय (जानने योग्य) नहीं रहती। यही निर्बीज समाधि है। अर्थात् 'असम्प्रज्ञात' का लक्षण निर्दिष्ट है, जिसमें अपने संस्कार ही शेष रहें। ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, कुछ न मालूम हो। संसार के बीज (कारण) संस्कारों को यह समाधि हटा देता है, इसलिये इसे 'निर्बीज' कहते हैं। इसमें परवैराग्य से चित्त अपना वृत्तिरूप काम छोड़ देता है। निरालम्बन वा निर्विषय हो जाता है। फिर उस भगवत प्राप्ति का लाभ उठाता है। परन्तु यह उपाय इस समय कठिन प्रतीत होगा क्योंकि संसारिक भोगों में फंस कर यह शरीर बहुत जीर्ण होचुके हैं। और विदेह और प्रकृतिलय योगियों से भिन्न योगियों की समाधि, श्रद्धादि पूर्वक होती है, जिसके श्रद्धा आदि उपाय हैं। और समाधि उपाय, इससे इनका उपायोपय सम्बन्ध है। योग के विषय में चित्त की प्रसन्नता, श्रद्धा है। उत्साह वीर्य है। जाने हुए विषय का न भूलना स्मृति है। चित्त का एकाग्रता समाधि है। ज्ञेय का ज्ञान प्रज्ञा है, श्रद्धा वाले को योग विषय में उत्साह होता है। उत्साह वाले को पिछले पदार्थों की स्मृति होने से चित्त एकाग्र होता है। एकाग्र चित्त वाला ज्ञेय (जीवात्मा) को ठीक जानता है। इस प्रकार ये (श्रद्धादि) सम्प्रज्ञात समाधि के उपाय हैं। इस सम्प्रज्ञात समाधि के अभ्यास से और पर वैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि होती है। मुझे योग प्राप्त हो, इस प्रकार की योगविषयिणी प्रीति, श्रद्धा है। यह श्रद्धा ही योगी की बड़ी रक्षक है। इसी से योग में प्रयत्न होता है। और प्रयत्न वाला ही ध्यान करता है। ध्यान से ही एकाग्रता होती है। एकाग्रता से ही जीव ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। अब इन उपायों से भिन्न सुगम उपाय बतलाते हैं। उस ईश्वर में भक्ति का अधिक होना वा उपासना करना प्रणिधान है। अर्थात् विषय जन्य भोगादि को छोड़कर अपनी सब अग्नि होत्रादि क्रियाओं को ईश्वर में अर्पण करना 'प्राणिधान' है। यह भी समाधि और ईश्वर प्राप्ति

का उत्तम उपाय है। जब पुरुष निष्काम कर्म करता हुआ ईश्वर की अधिक भक्ति अर्थात् ईश्वर में प्रेम करता है तो परमात्मा उसके ऊपर अनुग्रह करते हैं तो उनकी इच्छामात्र से ही समाधि और ईश्वर प्राप्ति हो जाती है समाधि के द्वारा यद्यपि जीवात्मा को अपने स्वरूप और ईश्वर दोनों ही का साधारण ज्ञान होता है, परन्तु श्रुतियों में "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति" (यजुर्वेद) ब्रह्मज्ञान को मोक्ष के प्रति कारणता इसलिये कही है कि दोनों में ब्रह्म श्रेष्ठ, और आनन्दाधिकरण है। क्योंकि इस समय शारीरकावस्था बहुत जीर्ण और शक्ति हीन व निर्बल दशा को प्राप्त होगई है इस लिये ऊपरि श्रद्धा आदि उपाय कठिन प्रतीत होंगे, अब भगवद् में अधिक भक्ति का होना यह ही एक सुगम उपाय है, सो सादर विनय पूर्व सेवा में निवेदन है कि सर्व जगत् निरन्तर भगवत् भक्ति में द्रौपदि की भांति सर्व आश्रय को त्याग केवल ईश्वर भगवान् का ही आश्रय लेकर और प्रेम से भक्ति में तत्पर हो तब ही उस परम पिता परमात्मा का साक्षात् हो, और फिर सर्व प्रकार के दुःखों की निवृत्ति होकर भगवत् की प्राप्ति हो सकती है। और कहा कि—"कलौतु केवला भक्तिः" भक्ति से अन्यत्र कोई उपाय संसार सागर से पार होने का नहीं है।

तारिबो तिहारो है

[ले०—श्री नन्दकुमार शर्मा "विशारद"]

बालों ना बखान औ गगना ना गिनाय सकै,
तुलहू सकै ना अतोल अस भारी है।
भूप दस सहसन सों जानकी स्वयम्बर में,
जैसे शम्भु-चाप नेक नाहिं गयो टारी है॥
तैसे सत कोटि पातकीहू मिल जाय तऊ,
जीत नाहिं पावें अघ ऐसो हमारो है।
छोटो मोटो पापी नाहिं पै है पतित राज,
जो पै नाहि तारो तौ तरिबो तिहारो है॥

भजन

या सांवरे की अजब रंगीली अंखियां।
आप रंगीलो याके सखा रंगीले,
और रंगीली सखियां ॥
ब्रजबाला सब मोह लईं,
कर कर मीठी बतियां ॥
चढ़ गिरवर पै बंशी बजावै,
हंसके बुलावै सखियां ॥
आप तो जाय द्वारिका छाये,
लिख लिख भेजी पतियां।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि,
बड़ो निठोरो रसिया ॥

२

तेरी बंशी की घनघोर सांवरे मारे डारे मोर।
एक दिन आधी पै बाजी,
सुनके सखी भईं सब राजी।
छोड़ काम घर घर ते भाजी,
जहां देखे तहां कृष्ण मुरारी ॥
निज चरणन में भक्त विराजे,
मिलिके प्रेम भक्त भोर ॥१॥
या बंशी ने सुर नर मुनि मोहे,
जीव जंतु जल थल के मोहे।
लता पता त्रिलोकी मोहे,
जमना थक गईं जोर ॥२॥
भौंरा घाट रमण रेती में,
जहां कहूं खेलत होय।
चीर घाट पै चीर चुराये,
काहू कदम पै बैठ्यो होय ॥
जारी झरोखा गोखा मोखा,
जहां कहूं झुकत होय।
कृष्णदास प्रभु तुमरे मिलन को,
मटकी डारी फोर ॥३॥

३

कौनसी ने डार दियो रे टौना ॥
अरी मेरी खेलन चन्द्र खिलौना ॥
मैं तो जल जमना भरबे को धाई,
मैंने सोवत छोरथा छौना।
मैं जल जमना भरबे आई,
मोय हंसतो ही पायो छौना ॥
बहन सहोदरा लाई है बधायो,
झुल्ला छाप और गहना।
परी कुड़ता टोपी में,
लगाय लाई टौना ॥
चन्द्र सखी भज बाल कृष्ण छवि,
सुन्दर श्याम सलौना ॥

४

सात बरस के सांवलिया ने गिरवर धारयोरी ॥
मोहन मुरली वारोरी,
यशुमति नन्द दुलारोरी ॥
माय यशोदा यों कहे,
मोरो लाला बारोरी ॥

अरे लाला इन्द्र उठ्यो घन घोर के,
कर दियो घोर अंधयारोरी ।
अरे लाला लै सुरही पायन पर्यो,
अरी दाको गर्व निवाथोरी ॥
लाला चतुर्भुज प्रभु हित राधिका,
पायै सरवस बा थोरी ॥

५

मैं तेरे काज श्याम विरज बन भटकी ॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में,
मेरे सिर तै सारी भटकी ।
गहवर बन और खोर सांकरी,
मेरी दधि मटकी पटकी ॥
नन्द महर को कुंवर लाडलो,
याने बड़ी अनीति सटकी ।
चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण छवि,
बलिहारी नागर नटकी ॥

६

बरसाने असल सुसरार हमारो म्यारो नातोरी ॥
कीर्ति के कन्या भई जसुदा के भयो नन्दलाल ।
गयो बधैया नन्द के नन्दीश्वर आयो दौर ।
एक लाख तो घोड़ा दिया कोई नौ लाख दी हैं गाय ॥

७

सब सारे बरसाने वारे,
रावल वारे सारे रंगवरसै गो ।
घर घर में बरसानियां सारे,
अली किशोरी वारे ॥
सोनी स्वामी सभी सारे,
लम्बे सुतना वारे ॥
अगवारे पिछवारे सारे,
सारे गैल गिलारे ॥
अहलायत महलायत सारे,
सारे खम्ब तिवारे ॥
चौका चूल्हा सभी सारे,
सारे पोवन वारे ॥
मानोखर बाबाजी सारे,
श्याम बिन्दुरी वारे ॥
आबाजी बाबाजी सारे,
जितने थाने वारे ॥

८

अहो विधना तोपै अंचरा पसार मांगों,
जन्म २ दीजो मोहे याही ब्रज को बसबो ।
अहीर की जाति समीप नन्द घर,
घड़ी घड़ी घनश्याम हेर हेर हंसिबो ।
दधि के दानन मिस ब्रज की बीथन में,
झकझोरन अंग अंग को परसिबो ।
सीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल,
शरद रैन रस रास को बिलसबो ॥

९

ब्रज बासिन के बालक संग में,
नित उठ खेलत नन्द को लाला ॥
कबड्डी भड्डू काई डण्डा हायड़ दूदू कंकड़ ।
सूवा पाट अठारह कंकड़ गेंद गिर्धा दस कंकर ॥
चड्डा चड्डी और दुबुक पिछोरा किलकिल कांटे आंख ।
दाई दूक शकट पट चौपड़ कुश्ती कोटा कांट ॥
आंख मिचौनी सादा दूकनो चिन चिन मूचा खुक्का ।
लठिया डींगा आतो पाती चील झपट्टा तक्का ॥
इतने कहे और बहुतेरे गौ बनचारन ग्वाला ।
करौ कृपा ब्रज दूर है मोपे श्री यशुमति के लाला ॥

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य ॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,, ।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ
४.	वेदोपनिषद्	।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,, =)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,, =)॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,, =)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,, =)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,, ॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,, =)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,, =)।
१२.	शब्दसंग्रह	,, =)॥
१३.	सारसंग्रह	,, ।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,, ।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,, =)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,, ।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,, ॥=)
१८.	भगवदंक	,, ॥)
१९.	गवांक	,, १)
२०.	महात्मांक	,, १)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।